

# गंगामाटी

लक्ष्मीनारायण लाल

## आधुनिक हिन्दी नाटक

जब हम नाटक अथवा रंगमंच को आधुनिक विशेषण से जोड़ते हैं तब हम उस तथ्य को रेखांकित करना चाहते हैं जो श्रेष्ठ नाटक और रंगमंच की आत्मा में सदैव वर्तमान रहा है—वह सत्य है अपने युग के यथार्थ से साक्षात्कार का। यह साक्षात्कार हर युग—काल में जिस सन्दर्भ और जितने आयाम से कोई नाटककार अपने परिवेश के साथ करना है उतने ही अर्थ में उस देश, काल और भाषा का नाटक और रंगमंच आधुनिक होता है।

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के पहले कृतिकार थे। इनके काल में जो परिवेश इन्हें प्राप्त था वह था सामाजिक मान्यताओं के स्तर पर नए पुराने संघर्ष का, ब्रिटिश राज्य अथवा अंग्रेजी संस्कृति बनाम हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का। इन दोनों परिस्थितियों के बीच भारतेन्दु को अपना नाटककार—व्यक्तित्व प्राप्त करना था। प्रकट है कि भारतेन्दु के ऊपर एक ओर संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रभाव है, तो दूसरी ओर ऐतिहासिक रोमांस का, तो तीसरी ओर रामलीला और रासलीला का, चौथी ओर नारी समस्या भी एक नये प्रसंग में विकसित होती है। अध्ययन करने पर भारतेन्दु का समूचा नाट्य साहित्य इन विभिन्न धाराओं का मनोरंजक समूह—सा लगता है। 'प्रेमजोगिनी,' 'विषस्य विषमौषधम', 'कर्पूर मंजरी'—इन नाट्य कृतियों के आधार पर भारतेन्दु संस्कृत नाटक और रंगमंच के क्षेत्र से कमशः नाटिका, भाण और सट्टक—इन रंग प्रकारों का अन्वेषण कर रहे थे और शायद उनका यह भी प्रयत्न था कि संस्कृति की इन महिमामयी परम्पराओं को फिर से हिन्दी में समादृत किया जाये। इसी तरह से ऐसे और भी अनेक नाटक हैं जो संस्कृत की रामलीला, रासलीला और संस्कृत के अन्य मध्ययुगीन नाट्य प्रकारों की स्थापना के उदाहरण मात्र लगते हैं। इससे इन नाटकों का प्रधान पक्ष शिल्प है कथ्य नहीं। कथ्य के स्तर पर इनके दो नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' और दूसरा 'अन्धेर नगरी' ऐसे अवश्य हैं जिनका अध्ययन आधुनिकता के सन्दर्भ में कर सकते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' अपने शिल्प में संस्कृत नाटक का शिल्प है, किन्तु अपने कथ्य में यह नाटक हरिश्चन्द्र के चरित्र की उस करुणा को व्यक्त करता है जहां सत्य के पालन में मनुष्य को बाजार में दयनीय स्थिति में बिकना पड़ता है और मानवता के श्मशान पर अपने पुत्र के शव के सामने अपनी ही पत्नी के कफन के लिए कहना पड़ता है। यह 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के मनुष्य के संघर्ष की एक झांकी है जो यथार्थ भी है और करुण भी ! दूसरी ओर 'अन्धेर नगरी' में अपने समय के परिवेश पर गहरा और व्यंजनात्मक प्रहार किया गया है।

भारतेन्दु के बाद प्रसाद ने नाटक की भूमिका को एक साहित्यिक स्तर दे दिया और उसे 'आत्मानुभूति' से जोड़ दिया। इस तरह प्रसाद के द्वारा नाटक के क्षेत्र में बाहरी समाजालोचना व समाज—सुधार इन सबसे बहुत गहरे मानवीय संघर्ष और उसके व्यक्तित्व की सार्थकता के प्रश्नों को जोड़ देने का कार्य किया गया है।

भारतेन्दु के बाद प्रसाद ने नाटक की भूमिका को एक साहित्यिक स्तर दे दिया और उसे "आत्मानुभूति" से जोड़ दिया। इस तरह प्रसाद के द्वारा नाटक के क्षेत्र में बाहरी समाजालोचना व समाज—सुधार इन सबसे बहुत गहरे मानवीय संघर्ष और उसके व्यक्तित्व की सार्थकता के प्रश्नों को जोड़ देने का कार्य किया गया। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त और 'ध्रुवस्वामिनी'—तीनों नाटक ऐसे हैं जो अपने परिवेश में ऐतिहासिक हैं, राजनैतिक प्रश्नों के लिए हैं, किन्तु वास्तव में ये तीनों

नाटक मनुष्य के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इन स्तरों पर ये नाटक अपने अर्थ में आधुनिक हैं। इनका ऐतिहासिक परिवेश निश्चय ही तत्कालीन समस्याओं से उद्भूत है और वे तीनों नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी समसामयिक हैं। चन्द्रगुप्त, चाणक्य, भटार्क, विजया, अनन्तदेवी और ध्रुवस्वामिनी—इन सारे चरित्रों के माध्यम से हम 1929 से 1936 तक के हिन्दुस्तान का सम्पूर्ण स्वरूप देखते हैं।

दूसरी ओर चन्द्रगुप्त के भीतर जो चारित्रिक संघर्ष है और जो उसमें द्वैत है उन दोनों से यह लड़ता—जूझता हुआ अपने आपको नाटक के अन्त में पाता है, उतने अर्थ में वस्तुतः 'स्कन्दगुप्त' एक आधुनिक नाटक सिद्ध होता है। रंगमंच के स्वरूप में भी प्रसाद के नाटक बहुत ही सम्भावनाओं और रंग—शक्तियों से परिपूर्ण हैं। इन नाटकों का दोष केवल यह है कि ये अपने विस्तार में एक संवेदना से अधिक बाहरी तथ्यों को भी अपने में समेटे रहते हैं, जैसे—धर्मों में समन्वय की समस्या, नीच—ऊँच की समस्या, भारतीय एकता की समस्या, विभिन्न संस्कृतियों की सामाजिकता की समस्या। किन्तु ये सारी समस्याएँ बहुत गौण रूप में नाटक से जुड़ी हैं और इनका मूल संवेदना से कोई महत्वपूर्ण योग नहीं है।

यह सच है कि हिन्दी क्षेत्र में लोक रंगमंच की परम्परा अबाध रूप से विद्यमान थी। रामलीला, कृष्णलीला, स्वांग, भगत, नौटंकी आदि सब थे। पर इनका सम्बन्ध उस बदले हुए समय, युगबोध से कतई नहीं था। राम या कृष्ण की कथा में न कोई परिवर्तन कर सकता था, न उस परम्परा के लोगों में यह प्रतिभा थी कि लीला, स्वांग और नौटंकी को तत्कालीन स्थितियों से जोड़कर उसे जीवन्त बनाने तथा उसमें समसामयिकता के तत्व बो देते, जैसे कि बंगाल में उनके परम्परागत लोकनाट्य 'यात्रा' में हुआ और उसमें से आगे पैदा हुई एक नाट्य परम्परा।

हिन्दी में उस नयी नाट्य परम्परा की एक सार्थक तलाश भारतेन्दु का 'अन्धेर नगरी' नाटक है और यह एक तलाश भारतेन्दु ने कितनी लम्बी यात्रा तय कर ली है—संस्कृत के सभी नाट्यकारों, रूपों को लिखकर। रंगमंच पर विचार करके और 'नाट्य मंडली' स्थापित कर, नाटकों का स्वयं अभिनय—निर्देशन कर। 'अन्धेर नगरी' कितनी परम्पराओं को अपने में पचाकर अपने समय में उत्पन्न सामाजिक जीवन का एक यथार्थ रूपक है जिसकी भाषा, रूपबंध और समूचा रंगमंच हिन्दी की अपनी मौलिक कृति है। पर इसके बाद यह परम्परा वहीं—की वहीं रूक गयी, और ठीक इसके विपरीत पारसी थिएटर विकसित होता रहा। विकसित इस अर्थ में कि यह समय के अनुसार राष्ट्रीय चेतना, धर्म और समाज के पुनरुत्थान की चेतना को अपना विषय बनाने लगा। इसलिए नहीं कि उसे इन विषयों में किसी प्रकार की स्वयं आस्था थी, बल्कि इसलिए कि उस काल का दर्शकवर्ग वही विषय चाहता था और इसी भावना में वह रंगा था।

पर यह विषय भावना उतनी ही जितनी कि उस समय की अंग्रेजी हुकूमत की नजर में कहीं खटके नहीं। प्रथम महायुद्ध के बाद से तीसरे दशक, के अन्त तक, यह इतना काल पारसी थिएटर की चरम सफलता का काल है और हिन्दी भाषा क्षेत्र के लिए यह काल 'स्वदेशी आन्दोलन', 'असहयोग आन्दोलन', 'क्रान्तिकारी संघर्ष' का समय है। इसके जवाब में अंग्रेजी हुकूमत की ओर से क्रमशः यह 'रौलेट एक्ट', 'जलियाँवाला हत्याकांड', 'कम्यूनल एवार्ड' और 'दमन' के अन्य क्रूर चक्र काल हैं।

ऐसी परिस्थिति में पारसी थिएटर को दोधारी तलवार पर चलना पड़ा। हिन्दीभाषी क्षेत्र की जनता की भावना का ख्याल, और अंग्रेजी हुकूमत से भय। इन दोनों परस्पर विरोधी स्थितियों का हल पारसी थिएटर ने ढूँढ निकाला—राष्ट्रीय चेतना, पुनरुत्थान की भावना पर इश्क, मेलोड्रामा, रोमानियत का चटक रंग चढ़ा देना। इसके बाद भी यदि कहीं राष्ट्रीय चेतना, भारत

का गौरव, स्वदेश भावना, हिन्दुत्व दिखे, तो उसे अजीबोगरीब सीन-सीनरियों, चमत्कारपूर्ण रंगमंचीय करिश्मों में इस तरह ढाप दिया जाये कि दर्शक उसी बाह्य से चमत्कृत रह जाए और इसके ऊपर गाने, रक्स, नाच वर्गरह की चाशनी में सब कुछ अजीब ढंग से मीठा-मीठा कर दिया जाये।

बिल्कुल ठीक इसी के समांतर इसी काल में जयशंकर प्रसाद अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में इसी पुनरूत्थान की भावना और राष्ट्रीय गौरव को किशोर मन की भावुकता और छायावादी कुहेलिका से ढककर, उस पर अस्पष्टता का झीना-सा आवरण चढ़ा कर अभिव्यक्त कर रहे थे। यह अत्यन्त उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु ने ऐसा कहीं नहीं किया है। वह जहाँ हैं, वहाँ एक तो स्पष्ट सीधे हैं और उस पर उन्होंने पारसी थिएटर के नाट्यतत्वों को अपना माध्यम नहीं बनाया है। जो उन्होंने प्रकट करना चाहा है, उसके लिये उन्होंने पारसी थिएटर से स्वतन्त्र, अपना सर्वथा अलग रूपबन्ध तैयार किया है। इसका कारण था कि प्रसाद के विपरीत भारतेन्दु प्रत्यक्ष रंगमंच से जुड़े थे और स्वतन्त्र नाट्यपरम्परा के लिए संघर्षरत थे।

प्रसाद ने ठीक इसके विपरीत किया। उन्होंने नाटक का रूपबन्ध और रंगमंच का पूरा विधान सीधे पारसी थिएटर से ज्यों-का-त्यों ले लिया और पारसी थिएटर के विपरीत (प्रतिक्रिया स्वरूप) उन्होंने उसमें कात्यात्मकता, साहित्यिकता भर दी। यह बिलकुल वैसा हुआ, जैसे शराब की बोतल (विदेशी) में गंगाजल भर देना। यदि प्रसाद ने भारतेन्दु की परम्परा में रंगमंच को देखा होता, उससे वह प्रत्यक्ष सम्बन्धित होते तो निश्चय ही वह अनुभव करते कि कात्यात्मक वस्तुविषय के लिए पारसी रंगमंच का रूपबन्ध बिलकुल विपरीत पड़ता है। इससे भी आगे प्रसाद को अपने लिए एक रंगशैली का अन्वेषण भी करना था, जिसे वह अन्ततः नहीं कर सके। कथा और चरित्र विधान में पारसी थिएटर के विपरीत (मुख्यतः आगा हश्र की नाट्यकला के) उन्होंने तीन अंकों, अर्थात् चरमसीमा से आगे 'फलागत (संस्कृत) और समाहार (डिनाउमेंट'-शैक्सपियर) तक सोचा, और उसी के अनुरूप कथा, चरित्र और अंक दृश्य योजना बनायी। संस्कृत रंगमंच का नाटक आरम्भ से चल कर 'फलागम' तक पहुँचने के लिए, और शैक्सपियर थिएटर का ड्रामा 'उद्घाटन' से लेकर 'समाहार' तक जाने के लिए पारसी थिएटर जैसे रूप विधान का सहारा न लेकन शुद्ध अयथार्थवादी, कात्यात्मक (काल्पनिकता) रंगविधान को अपना माध्यम बनाता है। और तभी निर्देशक, अभिनेता और दर्शक की कल्पना, सृजन शक्ति को जगाता हुआ कई स्तरों पर अपने-आपको निर्मित और सम्पूर्ण करता है।

पारसी थिएटर का सारा रंगविधान प्रसाद के नाट्य विषय और भावबोध से बिलकुल विपरीत पड़ने के कारण, नाटककार प्रसाद की शक्ति को खंडित नहीं करता, उन्हें बिखेर देता है। पारसी थिएटर जैसे 'इश्क' और राष्ट्रीयता के दो विरोधी घोड़ों पर चढ़ा था, ठीक उसी तरह प्रसाद की समूची नाट्यकला पारसी थिएटर और 'आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति' के परस्पर विरोधी अश्वों पर आसीन थी। जहाँ सारा दृश्यत्व रंगे हुए पदों, सीन-सीनरियों और अभिनय से लेकर यांत्रिक प्रभावों तक सीमित है, वहाँ काव्य के लिए कल्पना और गहराई की कोई गुँजाइश नहीं हो सकती। वहाँ काव्य केवल संवाद में हो सकता है या गीतों में। यही प्रसाद के नाटकों में हुआ भी।

इतना ही नहीं प्रसाद के काव्यस्तर पर वही कथित, सूचित, पारिभाषित राष्ट्रीयता, नवोत्थान, समाज सुधार का अतिस्वर छाया रहा।

‘आर्य ! इस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूँ और आर्य राष्ट्र की रक्षा में सर्वस्व अर्पण कर सकूँ, आप लोग इसके लिए भगवान से प्रार्थना कीजिए और आर्शीवाद दीजिए कि स्कंदगुप्त अपने कर्तव्य से, स्वदेशसेवा से कभी विचलित न हो।’ (स्कंदगुप्त)

‘भटार्क यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिए नहीं जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा।’ (स्कंदगुप्त)

दो परस्पर विरोधी रंग प्रवृत्तियों के प्रयोग के कारण, तथा नाटक में पाठ्य आग्रह के कारण विषय, कथा, चरित्र और अंक-विधान के स्तर पर अनेक सीमायें और सामने आती हैं।

एक ओर प्रसाद ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्राचीन भारत के मौलिक इतिहास के अन्वेषक होना चाहते थे, दूसरी ओर जैसे ‘बेताब’ और ‘राधेश्याम’ ने क्रमशः ‘महाभारत’ और ‘वीर अभिमन्यु’ में समूचे महाभारत का सार और पूरी अभिमन्यु गाथा कह डालना चाहा है। ठीक इसी तरह प्रसाद ने चन्द्रगुप्त और स्कंदगुप्त में ऐतिहासिक कथाओं से दोनों कालों की समूची तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है और इन्हें नाटक भी बनाना चाहा है। इसका फल यह हुआ कि इन दोनों नाटकों में ‘वस्तुकाल’ बहुत ही लम्बा हुआ है। ठीक वैसे जैसे ‘बेताब’ के ‘महाभारत’ में। चन्द्रगुप्त का वास्तुकाल पच्चीस वर्ष का है (जो भारतीय नाट्यशास्त्र से वर्ज्य है, पर पारसी थिएटर के अनुकूल है)। इस लम्बे काल से किस प्रकार नाटक को हानि पहुँचती है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग आरम्भ में किशोर या युवा थे, उन्हें स्वभावतः अन्तः प्रौढ़ या वृद्ध हो जाना चाहिए। पर नाटककार ‘बेताब’ ‘राधेश्याम’ की तरह तथ्य पर ध्यान न देकर उन्हें वहीं रखता जाता है। और ‘कार्नेलिया’, ‘कल्याणी’, ‘मालविका’, ‘सुवासिनी’, चन्द्रगुप्त, ‘राक्षस’ आदि पच्चीस वर्ष बाद भी युवा ही हैं। इतिहास और नाटक दोनों स्तरों पर ऐसी अनेक सीमायें और दोष सामने आते हैं।

पारसी थिएटर में दर्षक को लुभाने तथा पूरी कथा बताने के लिए एक-से-एक चमत्कारमूलक दृष्यों की अवतारणा की जाती थी। चन्द्रगुप्त में भी ऐसे चमत्कारमूलक दृष्यों के मोह ने इसे रचनागत अराजकता से भर दिया है। चार अंकों का यह नाटक उनचास दृष्यों में फैला है—जैसे ‘बेताब’ का ‘महाभारत’। घटना-वैचित्र्य लाने के लिए अकारण दृष्य बढ़ाये गये हैं और पात्र भी। चन्द्रगुप्त का कल्याणी को चीते से और कार्नेलिया को मनुष्य रूपी चीते फिलिप्स से बचाना, ‘रुस्तम’ की याद दिलाता है। इसमें और भी अनेक घटनायें कृपाण युद्ध, काव्य व्यापार-विषुद्ध पारसी थिएटर के समान होने के कारण नाटक को अनावश्यक रूप से अतिरंजना प्रधान बनाते हैं, और इसके काव्यत्व को स्वभावतः तोड़ते हैं।

अंकों की शुरुआत ‘रुस्तम सोहराब’ के विधान की याद दिलाती है, पर इनके अन्त झांकी (टव्लो) विधान के अनुरूप होते हैं और ‘बेताब’ ‘राधेश्याम’ का प्रभाव सामने आता है। दृष्य, प्रवेश, प्रस्थान, काव्य व्यापार—इन सब पर ‘हश्र’, ‘बेताब’, ‘डी0एल0 राय,’ ‘राधेश्याम’ के परस्पर विरोधी प्रभाव उल्लेखनीय हैं। अन्ततः प्रसाद की कोई रंगपैली तभी स्पष्ट उभरकर नहीं आती।

लगता है प्रसाद ने अपनी इस रंगमंच सीमा को ‘ध्रुवस्वामिनी’ तक पहुँचते-पहुँचते स्वीकार किया है और ‘ध्रुवस्वामिनी’ में वह यथार्थवादी रंगमंच-पैली की ओर झुके हैं। इससे पहले कि किसी भी नाटक में उन्होंने दृष्यसज्जा या मंच दृष्य का इतना विधिवत् विधान नहीं दिया है। केवल ‘स्कंधावार’, ‘राजप्रासाद’, ‘प्रकोष्ठ’, ‘ष्मषान’, ‘युद्धस्थल’, आदि एक शब्द से वह पूरे

दृष्य का संकेत कर देते थे ; पर यहाँ 'ध्रुवस्वामिनी' में उन्होंने बाकायदा दृष्यों का विधिवत् नाटकीय हेतु चयन किया है, पर ध्यान देने की बात यह है कि यथार्थवादी रंगमंच जैसा उनका नाट्य विधान ही नहीं है। तभी मंचसामग्री मंचविधान नाटक के जीवन से कर्मनिष्ठ न हो, मात्र इसकी शोभा के रूप में इस्तेमाल हुआ है। जबकि यथार्थवादी मंच की प्रत्येक वस्तु, मूक पात्र के रूप में सजीव ढंग से नियोजित होती है और उनसे व्यंजना, अर्थवत्ता पैदा की जाती है। यह सब 'ध्रुवस्वामिनी' की नाट्य दुनिया से बाहर की बातें हैं।

इन सब सीमाओं के बावजूद प्रसाद के नाटक की कुल उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, जिन्हें उनकी रंगमंचगत सीमाओं से वेध कर प्राप्त किया जा सकता है।

काव्यतत्व, प्रमुख उपलब्धि है, जो नाटक को सही अर्थों में नाटक सिद्ध करते हैं। इसी तत्व से मुख्यता 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' में एक अजब तरह का संमोहन है, जो आज तक बना हुआ है।

उन्होंने इतिहास पुराण को पारसी थिएटर के नाटककारों की तरह न देखकर उसे अपने समय से जोड़ा है और इस तरह उनकी रचना भी की है। अपने समय की समस्त राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक चेतना को उन्होंने अपने ढंग से छुआ है और उनको ऐतिहासिक मानवीय गहराइयों में ले गये हैं।

दृष्यत्व के साथ काव्यत्व को जोड़ने का प्रयत्न इनमें उल्लेखनीय है। इसीलिए पारसी थिएटर को सर्वथा भूलकर या काटकर यदि कल्पना की आँखों से 'स्कंदगुप्त' को देखा जाये तो एक महत्वपूर्ण नाटक है और रंगमंच उससे उभरता है। ऐसा रंगमंच जो हिन्दू सौन्दर्य बोध, स्थापत्य, वस्त्र, रंगरूप सबकी ओर सार्थक संकेत देता है।

उनके चरित्रों में कई आयाम हैं ; जो उन्हें उनके परिवेश से जोड़ कर माननीय और नाटकीय दोनों गुणों से मंडित करते हैं। उनमें गम्भीर संघर्ष छिड़ा है, ये चरित्र से व्यक्तित्व प्राप्ति की ओर बढ़ते सिद्ध होते हैं, और कभी-कभी तो वे सचमुच संगीत की अन्तिम लहरदार तान छेड़कर हमारे मानस में घर कर लेते हैं। 'स्कंदगुप्त', 'देवसेना' ऐसे ही अप्रतिम चरित्र हैं।

प्रसाद ने 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों में पारसी थिएटर से सर्वथा आगे, पूर्वापर ध्यान दिया है और नाटक की कथावस्तु, चरित्र को ऐसे नाटकीय बिन्दु से उभारा है जहाँ से वे वर्तमान और पूर्ववर्ती घटनाओं और क्रियाओं से कलात्मक सम्बन्ध जोड़ते चलते हैं।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य और रंगमंच में जो पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और समस्या-प्रधान नाटक हैं वे आधुनिक नाटक के उल्लेखनीय उदाहरण नहीं हैं जितने की प्रसाद के नाटक थे। क्योंकि प्रसाद में जो गौण था, आनुषंगिक था वही सारे तत्व आगे के नाटकों में नाटक के विषय बन जाते हैं।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयषंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्ददास में प्रमुख हो जाता है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षाबन्धन' में हिन्दू-मुसलमान की एकता को विषय बनाया गया है। वस्तुतः यह विषय समाज सुधार का है नाटक का नहीं। इसी तरह मिश्र जी की 'नारद की वीणा', 'गरुड़ ध्वज' हिन्दू संस्कृति और उसकी श्रेष्ठता को व्यक्त करने वाले नाटक हैं। इसी तरह उदयषंकर भट्ट का 'अम्बा' और इस काल के अन्य ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक आधुनिक नाटक के महत्वपूर्ण आन्तरिक तत्वों से शून्य हैं क्योंकि इनमें प्रत्यक्षतः सांस्कृतिक अध्ययन और तत्व अधिक हैं, मानवीय नियति और उसके यथार्थों का साक्षात्कार बहुत कम है। नाटक मूलतः नाटक होते हैं जो मानव, नियति और उसके

संघर्ष के दर्पण होते हैं। नाटक कभी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक नहीं होते। प्रसादोत्तर इन सारे नाटकों में षिल्प की दृष्टि से भी कोई प्रयोग नहीं है, न इन नाटकों में इनका रंगमंच पक्ष ही प्रधान है। बल्कि हम यों कह सकते हैं कि प्रसादोत्तर युग के सारे नाटक अभिनय और रंगमंच परिप्रेक्ष्य में लिखे ही नहीं गये। ये सांस्कृतिक अध्ययन और पठन-पाठन के लिए तथा नाटकेतर उपलब्धियों के लिए अधिक लिखे गये।

जिस प्रकार नाटककार प्रसाद के भीतर भारत के अतीत के प्रति आस्था, कवि का भावुक व्यक्तित्व तथा पारसी थिएटर का रूपबंध और रंगविधान के स्तर पर प्रभाव ओर विषयवस्तु, भाषा, चरित्र आदि के प्रति गहरी प्रतिक्रिया, पारसी थिएटर के प्रति तीव्रतर दुराव और इनके स्थान पर इब्सन के नाटकों के रंगविधान की स्वीकृति कार्य कर रही थी। इन्होंने सबसे पहले भावात्मकता के विरुद्ध बुद्धिवाद का स्वर बुलन्द किया।

‘ऑख मंदकर स्वीकार कर देने से श्रेयस्कर है, ऑख खोलकर अस्वीकार करना। आज दिन जिसे हम बुद्धिवाद मीमांसा कहते हैं, उसके मूल में यही प्रेरणा काम कर रही है.....मेरा अपना विष्वास तो यह है कि बुद्धिवाद स्वतः अनन्त विष्वास है। उसमें भ्रम और मिथ्या को स्थान नहीं.....बुद्धिवादी व्यक्तिवादी भी हो सकता है।’

(मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ ?—मिश्रजी ‘मुक्ति का रहस्य’ की प्रथम संस्करण की भूमिका, पृष्ठ 4)

बुद्धिवाद से स्वभावतः व्यक्तिवाद को जोड़कर मिश्रजी ने व्यक्तिगत नैतिकता, सामाजिक नीतिनिर्वाह को क्षेत्र में बड़े ही निर्भीक और स्वतंत्र ढंग से सोचा। इन दोनों क्षेत्रों में सचाई जो है, जिस रूप में है, उसे तो यह स्वीकार कर लेता है, लेकिन उस पर कितने बैठन चढ़े हैं, उसे कितने कपड़े और गहने पहनाये गये हैं, वह कितनी जंजीरों में बाँधी गई है, इन बातों को वह स्वीकार नहीं करता। ‘सन्यासी’ (1931), ‘राक्षस का मन्दिर’ (1931) लिख चुकने के बाद ‘मुक्ति के रहस्य’ की भूमिका में उन्होंने बड़े विष्वास के साथ बुद्धिवाद की स्थापना की। कहा, बुद्धिवाद किसी तरह का हो, किसी कोटि का हो, समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता।’ बुद्धिवाद में ‘पुगरकोटेड’ कुनेन की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो तीक्ष्ण सत्य है, उसका घाव गहरा तो होता है लेकिन अंगभंग करने के लिए नहीं, मवाद निकलने के लिए, हमारी प्रसुप्त चेतना को जगाकर हमारे भीतर नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिए।

इस बुद्धिवाद, और व्यक्तिवाद के भीतर मिश्रजी ने नाटक सम्बन्धी जो मान्यताएँ बनायी, उन्हें इन बिन्दुओं से देखा पकड़ा जा सकता है।

- बुद्धि और तर्क के भीतर से ही यथार्थ की अभिव्यक्ति नाटक में हो सकती है, भावना या कल्पना से नहीं।
- यही और ऐसा ही यथार्थवादी नाटक, नाटक कहलाने का अधिकारी है। इन दोनों भावबिन्दुओं को देखने से प्रकट है कि यथार्थवाद की यह प्रेरणा इन्होंने इब्सन से ली। मतलब जहाँ पारसी नाटक और रंगमंच, तथा प्रसाद का नाटक और रंगमंच शेक्सपियर और विक्टोरिया नाट्य परम्परा से प्रत्यक्ष ढंग से जुड़ा है, वहाँ इन्होंने इन दोनों की प्रतिक्रिया में, अपने ‘नाट्य’ का सम्बन्ध उससे आगे बढ़कर इब्सन से जोड़ा।

पर 'इब्सन' के 'नाट्य' का यथार्थवाद वह नहीं है जो मिश्रजी ने ग्रहण किया। वह महज उसके यथार्थ का बाहरी ढाँचा है, जो ऊपर से 'समाज सुधार', 'समाजालोचन' और परम्परा के प्रति 'विद्रोह' सा दिखाता है। यह यथार्थ उतना ही नहीं है जो परस्पर बोलचाल की भाषा में (वाद-विवाद) प्रकट होता है या घर-गृहस्थी, कमरे या ड्राइंगरूम के परिवेष के भीतर से अपने को प्रत्यक्षतः प्रकट कराता दिखता है। वह यथार्थ नहीं महत्तर यथार्थ इन सब साधनों से कहीं आगे अप्रत्यक्ष रूप से विकसित, स्वनिर्मित होकर कात्यात्मक यथार्थ के धरातल पर जा पहुँचता है।

और बुनियादी सवाल यही उभरता है—मिश्रजी ने इब्सन से वह बाहरी यथार्थ ही क्यों ग्रहण किया ? क्यों इन्होंने इब्सन के सम्पूर्ण यथार्थवादी रंगमंच को नहीं लिया ? उन्होंने क्यों प्रत्यक्ष बुद्धि, तर्क के ही सहारे मानव समस्या को केवल सामाजिक 'समस्या' के ही स्तर से सोच-विचार किया ?

दरअसल नाटक के रंगमंच की दुनिया एक अप्रत्यक्ष संसार है। यँ यह प्रत्यक्ष तो सबसे ज्यादा है, पर नाटक का यह प्रत्यक्षीकरण अभिनेता, निर्देशक, रंगषिल्पी की मध्यस्थता से मंच पर दर्षक के सामने होता है। यह एक विषिष्ट विधा ही नहीं, सब विधाओं से ज्यादा यह दूसरों से (दूसरी कलाओं, मनुष्य, कलाकार, अनुभव, सृजन) संयुक्त है।

पारसी थिएटर की प्रतिक्रिया में यही संपृक्तता पहले प्रसाद से टूटी और प्रसाद के बाद दूहरी प्रतिक्रिया से यह 'मिश्र', 'सेठ', 'प्रेमी' आदि के द्वारा तोड़ी गयी। प्रसाद कात्यात्मकता को लेकर टूटे, पर ढाँचा 'पारसी थिएटर' का ही रखा। इसलिये वह कैसे भी हो, रंगमंच के विधान के अन्दर कहीं-न-कहीं संपृक्तता लिये हैं। काव्यात्मकता उस टूटन में कहीं महत्वपूर्ण सेतु भी बनी है। यह सब इसलिए भी हुआ कि प्रसाद ने यथार्थ को कवि के धरातल से ग्रहण किया और उनका नाटककार 'व्यक्ति' की अपेक्षा मानवीय 'सामाजिक' ज्यादा रहा।

'प्रसाद' के बाद इन सभी नाटककारों (गोविन्द बल्लभ पंत को छोड़कर) ने रंगमंच से सर्वथा कटकर जिस दुनिया में जाकर नाटकों को लिखा, उसे यदि हम कोई शास्त्रीय नाम देना चाहें तो निष्चित संज्ञा दे सकते हैं।

- भाषा का रंगमंच
- प्रस्ताव, थीसिस, प्रबन्ध का नाट्य
- कथात्मक रंगविधान का जगत

भाषा का अत्यधिक प्रयोग 'पारसी थिएटर और प्रसाद' दोनों में हुआ है। पारसी थिएटर में इनके अति प्रयोग के पीछे दो कारण थे। वहाँ अभिनेता एक ही बात को, भावना को दो तरह से दूहरे ढंग से कहता था—पहले वह दर्षक को बताता था, फिर वही स्वयं कहकर (मुख्यतः बहरे तबील और अन्य छंदों में) उसी का अभिनय करता था, दूसरे उसमें 'प्रचारक' का भी अत्यधिक हस्तक्षेप था, इसलिये भाषा का अराजक प्रयोग हुआ था। पर बुनियादी ढंग से इस भाषा प्रयोग में अभिनेता इसके भीतर विद्यमान था और साथ ही इसमें दर्षक भी शामिल था। इसी के अनुरूप उसमें अतिरंजनाप्रधान, चमत्कारमूलक घटनाएँ और कार्यव्यापार थे, इसलिये भी भाषा प्रयोग की वह अराजकता उसका अभिन्न अंग बन जाती थी। 'प्रसाद' में वही अभिनेता और दर्षकबोध पारसी थिएटर की तुलना में भाषा के भीतर से कुछ दूर छूट गया। इससे जो अन्तर पैदा हुआ उसमें दो नये तत्व आ घुसे :



- साहित्यकता
- व्याख्याकता

और प्रचारक के स्थान पर कवि का हस्तक्षेप आ गया।

प्रसाद के बाद मिश्र, सेठ, प्रेमी के भाषा प्रयोग में वही अभिनेता और दर्षक अपेक्षाकृत गायब हो गए। इसके स्थान पर क्रमशः आ गए परस्पर वाद-विवाद करने वाले स्त्री-पुरुष (चरित्र नहीं) और 'पाठक'। और ये प्रचारक, कवि के स्थान पर तार्किक 'वकील' और 'बुद्धिवादी' लेखक हो गये। इस सृजन भूमिका पर, जब इन नाटककारों ने 'इतिहास', 'पुराण' की कथा-वस्तु और चरित्र लिये तो अपनी संस्कृति से स्वयं को जोड़ने के लिए 'इब्सन' 'प्रसाद', 'डी० एल० राय', 'पारसी थिएटर' सबको बुद्धि द्वारा बेधते हुए सीधे ये भरतमुनि तक पहुँचे और अपने नाट्य का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ने लगे।

मानवीय विषयों और समस्याओं पर वाद-विवाद करने का तत्व इब्सन में खूब था, पर वहाँ ('डाल्स हाऊस', 'घोस्ट' आदि) हर नाटक में विषय एक ही था और समस्या भी एक ही ली जाती थी और नाटक का सारा यथार्थवादी ढाँचा, अपनी तमाम 'बातों', 'वाद-विवादों', 'तर्कों के बावजूद रंगमंचीय 'कार्य' से उद्भूत होता था। पर यहाँ इन प्रत्यक्षतः इसका सारा रंगमंचीय विधान न किसी एक निश्चित कार्य से उद्भूत होता है, न किसी नाटकीय परिणति से इनका कोई सम्बन्ध जुड़ता है।

मानवीय भावनाओं, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर व्याख्या, टीका-टिप्पणी, चरित्रों के मनोवेग को सूचित पारिभाषित करने की परम्परा संस्कृत नाट्य से लेकर शेक्सपियर, पारसी थिएटर और 'प्रसाद' तक हमें मिलती है। पर वहाँ वह विषिष्ट तत्व उसके रंगमंच प्रकार और अभिनय शैली के भीतर से आता है। वहाँ सारे रंगमंच की प्रकृति ही ऐसी है !

मानवीय भावनाओं, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर व्याख्या, टीका-टिप्पणी, चरित्रों के मनोवेग को सूचित पारिभाषित करने की परम्परा संस्कृत नाट्य से लेकर शेक्सपियर, पारसी थिएटर और 'प्रसाद' तक हमें मिलती है। पर वहाँ वह विषिष्ट तत्व उसके रंगमंच प्रकार और अभिनय शैली के भीतर से आता है। वहाँ सारे रंगमंच की प्रकृति ही ऐसी है !

मानवीय भावनाओं, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर व्याख्या, टीका-टिप्पणी, चरित्रों के मनोवेग को सूचित पारिभाषित करने की परम्परा संस्कृत नाट्य से लेकर शेक्सपियर, पारसी थिएटर और 'प्रसाद' तक हमें मिलती है। पर वहाँ वह विषिष्ट तत्व उसके रंगमंच प्रकार और अभिनय शैली के भीतर से आता है। वहाँ सारे रंगमंच की प्रकृति ही ऐसी है !

पर यहाँ रंगमंच की प्रकृति और उसकी रंग-शैली परस्पर विरोधी शैलियों के तालमेल तथा गडमड के कारण और मूलतः इसमें जीवित रंगमंच बोध की विहीनता के कारण 'पाठ्य' तत्व प्रमुख हुआ। और उसमें भी संस्कृति, इतिहास जीवनादर्ष जैसी भरी-भरकम विषयों का भार पड़ा। फलतः यहाँ सब कुछ मूल रूप में 'कहा गया', 'लिखा गया', 'बताया गया' ; 'विचार विनिमय हुआ'-'जिया' और 'रचा नहीं गया।

पारसी थिएटर या पश्चिमी ड्रामा के दबाव और प्रतिक्रिया स्वरूप और अपनी रंगआस्था के फलस्वरूप 'भारतेन्दु' और 'प्रसाद' में रंगमंच और अभिनय शैली की जो तलाष है, प्रयत्न है, वह यहां सर्वथा लुप्त है। यहाँ सारा इतिहास, संस्कृति, जीवनादर्ष, राष्ट्रीयता, व्यक्ति समाज के विचार स्तर पर है।

इन नाटककारों के नाट्य चरित्र कर्म करने की अपेक्षा बोलते ज्यादा हैं। पारसी थिएटर में चरित्र बोलते भी थे, और यही कार्य भी करते थे ठीक जैसे शेक्सपियर और संस्कृत रंगमंच में चरित्र करते थे। वहाँ वस्तुतः 'कार्य, कथन' और 'कार्य संपादन' दो धरातलों पर, उस रंगमंच प्रकृति के अनुकूल प्रस्तुत होता था। 'कथन', 'संभाषण', कल्पना जगाने, सूचना देने के उद्देश्य से और वही कार्य संपादन 'दृष्यत्व' के लिए होता था। अर्थात् एक ही बोध को शब्द से लेकर कार्य तक गतिमान करना, खचित देखना, ताकि उसमें मानवीय गति, कार्य बोध पैदा हो।

पर यहाँ 'बोलना' प्रायः वाद-विवाद, मानसिक संघर्षों के सूचनार्थ और ज्ञान-प्रदर्शन के स्तर पर होता है। इसलिए यहाँ नाट्य संप्रेषणीयता अपेक्षाकृत 'पाठ्य' के एक ही स्तर पर होती है। यहाँ अनेक दृष्यों के अभिनय बल्कि कुछ संपूर्ण नाटकों के अभिनय केवल बैठकर ही, बिना उठे, घूमे ही किया जा सकता है। इनका जैसे विष्वास था कि नाटक रेडियो माध्यम जैसे बोलकर, संवादों द्वारा ही प्रस्तुत हो सकता है। जैसे रंगमंच नहीं, भाषा रंगमंच।

यहाँ चरित्र-ऐतिहासिक, पौराणिक, और सामाजिक सभी प्रकार के नाटकों में अपने संघर्षों को अनुत्पन्न भाषा, दग्ध वाक्यांशों, आश्चर्यजनक संभाषणों, तीव्र वाद-विवादों द्वारा भी प्रकट करते हैं। जैसे प्रायः चरित्र पाठकरूपी न्यायधीष और जूरी (दर्षक) से सामने विचारों के विविध कठघरों में खड़े हो वकील की तरह परस्पर बहस कर रहे हों और अपने विष्वासों, स्थापनाओं के लिए नजीरें, गवाहियों, उक्तियों उद्धरण आदि पेश कर रहे हों। इसी का एक फल यह भी है कि इन सभी नाटकों में एक-से-एक सूक्तियों, आप्तवाक्य, सूत्रवचन और महाकाव्य भरे पड़े हैं। इसे निष्चय ही 'बुद्धि' और 'भावना' प्रयोग का फल ही कहा जा सकता है।

भाषा रंगमंच के कारण इन नाटकों में विषय 'प्रस्ताव थीसिस' प्रबन्ध की भूमि खूब स्पष्ट होकर सामने आयी है।

'प्रसाद' जहाँ पारसी थिएटर की प्रतिक्रिया और अपनी आस्थावष भारत के इतिहास की वास्तविकता पर बल दे रहे थे, और इससे उस पूरे काल की सांस्कृतिक स्थिति नाटक में झलक आती थी। ठीक इससे आगे अब नाटक ऐतिहासिक पौराणिक न होकर विषुद्ध 'सांस्कृतिक' होने लगे, अपने कथ्य और उद्देश्य इन दोनों धरातलों से।

हर नाटक एक पूर्व निश्चित, निर्धारित प्रस्ताव, थीसिस या प्रबन्ध मूल्य पर आधारित हुआ।

वस्तुतः ये सारे नाटककार मानववादी थे। राष्ट्रीय संग्राम और पुनरूत्थान की भावना से बहुत नजदीक से जुड़े थे। अतएव इनमें हम बिन्दु पर आदर्श और यथार्थ, परम्परा और विद्रोह, पुराना और नया के बीच इनके निश्चित विष्वास, भावनाएँ तथा विचार थे। उन्हीं को ये लोग नाटक में विषय-वस्तु बनाते थे। उसी को अनेक तर्कों और उपायों से सिद्ध करते और खंडित-मंडित कर अपने एक पूर्व-निश्चित हल पर पहुँचते थे। यही कारण है कि इन सभी नाटककारों की नाट्यरचनाएँ पठन-पाठन, ज्ञान-बुद्धि और तर्कों पर खड़ी हैं। अनुभूति और व्यंजना पर नहीं। 'भाषा-प्रयोग की प्रकृति' से स्पष्ट है कि ये सभी अपने एक निश्चित विचार, स्थापना, प्रबन्धबोध के चारों ओर भाषासंवाद का मकड़ी जाल बुनते रहते हैं। इस बनावट में सर्वत्र वही बुद्धि, भावना और तर्क के फन्दे मिलेंगे।

तभी यहाँ हर नाटक का आरम्भ एक विचार, एक प्रस्ताव, एक समस्या का 'आरम्भ' है और बीच का सारा भाग उस समस्या पर विचार-विनिमय के घात-प्रतिघात मध्यभाग है और अन्त उस विचार, प्रसाद, प्रस्ताव और उस समस्या की समाप्ति, हल या उपसंहार का है। यहाँ नाटक की समस्या 'इब्सन', 'शेक्सपियर', 'प्रसाद' की तरह अपने पूर्व पर नहीं टिकी होती, न वह

भविष्य के लिए छोड़ ही दी जाती है, वरन् प्रस्ताव, प्रबन्धबोध के अनुरूप हर नाटक के साथ समस्या शुरू होती है और उसके अन्त में वह समस्या समाप्त हो जाती है। मिश्रजी और प्रेमी इसमें अत्यन्त कुशल हैं। सेठजी आदि और अन्त के बारे में उतने निश्चित और स्पष्ट नहीं हैं, इसके लिए इन्होंने अपने नाटकों में 'उपसंहार' का सहारा लिया है ; ताकि एक शिक्षक, नेता, सुधारक, बुद्धिजीवी के चिन्तन का प्रभाव पैदा हो, और समस्या कहीं से भी शेष न रह जाए।

मिश्र जी में यदि वह कहीं शेष रहने लगती है तो वह 'दषाष्ममेध' नाटक में वीरसेन द्वारा विध्यांचल में विध्यवासिनी का मन्दिर बनवा देते हैं, 'राक्षस का मन्दिर' में मुनीष्वर (राक्षस) द्वारा मातृमन्दिर-विधवा आश्रम खुलता देते हैं।

इन नाटक तथ्यों का अंततोगत्वा प्रभाव इनके नाट्य विधान पर पड़ा है। इस प्रसंग में सर्वाधिक उल्लेखनीय तत्व यह है कि जहाँ नाटक का सारा विधान बुनियादी तौर पर नाटक की अपेक्षा कथात्मक रंगविधान के समीप आ गया है।

कथा और चरित्रविधान में यह इतिवृत्तात्मकता-आदि, मध्य और अन्त तक ही नहीं बल्कि उपसंहार तक फैली हुई है, और नाटकीय गति में यह घटनात्मक और भावुकतापूर्ण कार्यों की परिसमाप्ति में।

इस तथ्य की पहचान इन नाटकों के अंकविधान और दृष्ययोजना से होती है चाहे सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटक हो, चाहे सामाजिक, अंक अथवा दृष्यविधान बिल्कुल कथासाहित्य सा (पाठ्य) होता है। शुद्ध पाठक को ध्यान में रखकर दृष्य यहाँ लिखे गये हैं, वर्णित एवं कथित हैं। रंगमंच को ध्यान में रखकर नहीं।

जगदीषचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' नाटक से आधुनिक नाटक और रंगमंच की परम्परा फिर से उदित होती है। आधुनिक बोध में वर्तमान और भूत (इतिहास) के बीच जो व्यवधान उपस्थित होता है उसे कलात्मक सेतु द्वारा जोड़ना तथा अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को अभिव्यक्ति देना एक महत्वपूर्ण लक्षण है। दूसरी ओर कोणार्क के द्वारा नाटक के स्तर को आंतरिक अनुभूति और काव्य-स्तर से जोड़ देना, रंगमंच पक्ष के तत्वों का समन्वय कर एक नया रंग प्रयोग करना-ये सारे लक्षण तथा विशेषताएँ 'कोणार्क' की है ! 'कोणार्क' की समूची संरचना में मन्दिर के गिरने का कार्य है, उस पर रेडियोषिल्प का अमिट प्रभाव है। रेडियों के इस तत्व के नाटक के अन्तिम भाग को रंगमंच के स्तर से निर्बल बनाया है, यह सत्य स्पष्ट है !

स्वतन्त्रता के बाद आधुनिक हिन्दी-नाटक और रंगमंच का महत्वपूर्ण चरण प्रारम्भ होता है। परम्परा, प्रयोग, प्राचीन और नवीन, पूर्व और पश्चिम इन सब रंग-दृष्टियों का सम्यक् अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इससे भी आगे व्यावहारिक नाट्य प्रशिक्षण, रंग-अध्ययन और प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य शुरू हुए। हिन्दी-क्षेत्र के प्रमुख नगरों में संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटक खेले जाने लगे तथा नाटककार पहली बार रंगमंच से व्यावहारिक क्षेत्र में आया तथा अभिनेता रंग-षिल्पी और दर्षक के बीच बैठकर कार्यरत हुआ। इलाहाबाद में 1955 ई0 में नाट्य केन्द्र 'स्कूल आफ ड्रामेटिक आर्ट' की स्थापना इसी प्रसंग का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। दूसरी ओर दिल्ली में 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' की स्थापना तथा प्रमुख नगरों में 'नाटक अकादमीज' की स्थापना, और-'अनामिका' (कलकत्ता), 'दर्पन' (कानपुर), 'दिल्ली नाट्यसंघ' (दिल्ली), 'थिएटर यूनिट' (बम्बई), से हिन्दी नाटक और रंगमंच के उल्लेखनीय केन्द्र स्थापित हुए। इस व्यापक परिवेष और रंग-चेतना के भीतर से कई महत्वपूर्ण शक्तिशाली आधुनिक नाटक हिन्दी में प्रकट हुए, जैसे-'मादा कैक्टस', 'अन्धायुग', 'आषाढ़ का एक दिन', 'रातरानी', 'दर्पन', 'सूर्यमुख', 'कर्फ्यू', 'व्यक्तिगत'-इन सभी नाट्य कृतियों की शक्ति यह है कि इनमें रंगमंच पक्ष और साहित्य

पक्ष, दोनों अपने श्रेष्ठ बिन्दुओं पर प्रतिष्ठित हैं और इन सबमें व्याप्त जीवनबोध और रंग-दृष्टि आधुनिकता के अनेक संदर्भों में सार्थक हैं।

### गंगामाटी में क्या है ?

प्रकट जीवन क्या है—असहज, अस्वाभाविक और रिक्त। इसे सहज, सरल और स्वाभाविक रूप से जीने की जबाय अभावग्रस्त रखकर मारा जाता है। पर वह मरता नहीं, उसके रिक्त में विष्वास, भावना, भय, हिंसा आदि भर जाते हैं और उसे छद्म बना देते हैं अथवा अतिरंजित। तब क्या होता है, यही दिखाना 'गंगामाटी' का मूल विषय है। जीवन कहलाने वाले विरोधों, विपर्ययों, भटकावों, अतिवादों और दुराग्रहों के अनेक आयामी संगठन जीवन को विकृत करते और बनाए रखते हैं, इनमें से गुजरते हुए यह नाटक जीवनतत्व के बलपर संघर्ष करते हुए अन्त में जीवन का साक्षात्कार करवा देता है और इस प्रकार प्रबल नाटकीय अनुभव से मनुष्य की मनुष्योचित जिजीविषा को रेखांकित करता है।

'गंगामाटी' में दिखाया जाता है कि हम जीवन को सम्पूर्ण रूप में नहीं जीते। यह कहना अधिक ठीक होगा कि सबके पास सम्पूर्ण रूप से जीने का विकल्प ही नहीं छोड़ा गया है। सहज इच्छाओं को या मार दिया जाता है या उन पर धर्म—व्यवस्था, समाज व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था आदि संगठन युक्त विष्वासों, सिद्धान्तों या रूढ़ियों का इतना कड़ा पहरा है कि सहज सरल जीवन उससे भयभीत हो जाता है। भय से जीवन में अभाव पैदा करके फिर उसे विष्वास, अन्धविष्वास, बुद्धि और काल्पनिक सिद्धियों के बल से भरने का उपक्रम किया जाता है अथवा करना सिखाया जाता है। इस तरह से मुक्त और स्वाभाविक मानव धर्म लुप्त हो जाता है। मनुष्य छद्म जीवन व्यतीत करने को विवष, व्यवस्थाओं का पालन करने वाला यन्त्र मात्र बन जाता है।

छद्म जीवन के अनेक रूप 'गंगामाटी' गांव के लोगों के सम्बन्धों के धरातल पर दिखाये जाते हैं। नाटक प्रतीकात्मक है। गंगामाटी गांव, गांव होकर भी, समस्त भारत और उसकी सभ्यता का निदर्शन है, जहाँ एक ओर भय पर टिके हुए आस्था विष्वास वाले षिवानन्द का रूढ़ मूर्तिपूजक धर्म है तो दूसरी ओर विकृत तन्त्राचार वाली कापालिकता। धर्म का प्रयोग पंजा या षिकंजा बनाकर करने से साधना और कर्मकांड की यांत्रिकता रह जाती है जो संगठित शक्ति के कारण हिंसा का रूप ले लेती है। षिवानन्द इसीलिए गंगा को पाखंड से और देवल (जो उनका लड़का है) अपनी पत्नी को श्मषान साधना वाली हिंसा से घुट-घुट कर रहने की यन्त्रणा देते हैं।

नाटक के कथ्य की सारी आधुनिकता जिस सहज, सरल ओर मानवीय जीवन की ओर है, उसका प्रतीक है गंगा। वह प्रताड़ित, लांछित, दंडित और वंचित होने पर भी ऊपर से निरीह और मूक बनी हुई जीवन रस को बचाये रखती है। वह प्रेरणा भी है और आदर्ष भी। उसी के संसर्ग और प्रोत्साहन के कारण कुसुम में मुक्त उल्लास और नैसर्गिक निष्कलता है, कमल में अन्याय और जड़ता के विरुद्ध उभरती हुई सामाजिक न्याय के लिए चुनौती भरी आवाज है, मनोहर में मानवोचित अनुगामी प्रवृत्ति है और प्रसादी में मानवधर्म की अभिलाषा एवं उद्योग है। गंगा रूपी सहज सरल जीवन पाखंड, भय, हिंसा, जड़ता और अन्यायपूर्ण संगठनों से घिरा हुआ है—ये ही गंगामाटी गांव के विविध लोगों के जीवन के दृष्य हैं। धर्म और तंत्राचार की बात हो चुकी है। समाज व्यवस्था में जात-पाँत और छुआछूत के षिकार गंगा के अतिरिक्त मनोहर और सीता हैं ; अर्थव्यवस्था में ऋणषोध के लिये जीवन की बलि लेता हुआ चंद्ररा है और बलि उसकी पत्नी सीता है ; पारिवारिकता में अबला होने के कारण पुरुष के अत्याचार सहती हुई गंगा, सीता और कुसुम हैं तो लघु होने के कारण देवल और कमल हैं। मनुष्य का जीवन रिक्त

है और रिक्तता दुर्बलता है। इस दुर्बलता को अतिवादी या घोर प्रयत्नों से भरने के उपक्रम में देवल पहले तांत्रिक साधक बनता है और बाद में पिता के कारण पाखंडी साधु। लेकिन क्या कृतिमताओं या अतिवादों से जीवन को सहज-सम्पन्न बनाया जा सकता है ? क्या जीवन की जीवन्तता बचाई जा सकती है ? अगर नहीं तो क्यों और हों तो कैसे ? गंगा का चरित्र इसी का उत्तर है। गंगामाटी की जड़ मिट्टी में वही प्राण तत्व है, कल्मष कर्दम में वही निर्मल स्रोतस्विनी है, अभाव में वही सद्भाव है और निष्क्रियता में सक्रियता।१

गंगामाटी नाटक में उपयुक्त जीवन और जड़ता के वैषम्य को चेतन या चिन्तन के धरातल पर प्रतिबिम्बित करने वाला नाटककार कहीं है ? अन्य नाटकों के समान वह नाटक से बाहर या नेपथ्य में नहीं है। वह 'पुरुष' (पात्र) बनकर कभी अन्य पात्रों का चरित्र बन जाता है तो कभी अलग खड़ा हुआ अकेला सचेत द्रष्टा जो चुप नहीं रहता अपितु चेतन प्रतिक्रिया करता हुआ सारे नाटकीय कार्य का सहवर्ती या सहभागी है। वह जीवन की विकृतियों और विसंगतियों से सचेत पलायन करके जाना चाहते हुए भी नहीं जा पाता, वह बहुविध जीवन से घिरा हुआ, कभी सम्पृक्त और कभी तटस्थ, एक ऐसा दर्पण है जहाँ जीवन की सारी छबियाँ बिम्बित प्रतिबिम्बित होती हैं। वह इन छाया-बिम्बों को दर्षकों (पाठकों) की संवेदना का अंग बनाने के लिए संवादात्मक प्रतिक्रिया करता जाता है और मूक द्रष्टा या जड़ 'रिफ्लैक्टर' न बनकर अतीत और समसामयिकता का जीवन्त साक्ष्य प्रस्तुत करता है। उसकी स्मृति देवी मन्दिर के इतिहास और 'जिया हो' उत्सव की गाथा प्रस्तुत करती है। गंगामाटी गांव के गंगापार के राजा के हाथों बसाये जाने जमींदार को सौंपे जाने एवं मन्दिर निर्माण होने के ठोस अतीत में वर्तमान जीवन स्पन्दन का वह सेतु भी है।

इस प्रकार गंगामाटी नाटक में धार्मिक बंधन बनाम मानवता, अतिवाद बनाम सहजता, भक्ति बनाम शक्ति, सरलता बनाम कृत्रिमता, विवाह बनाम प्यार एवं जीवन बनाम निर्जीवता को व्यंग्य विडम्बना और प्रतीक के माध्यम से एक ऐसी उल्लसित नैसर्गिकता तक ले जाया गया है जहाँ 'जिया हो' का उत्सव जीवन का उत्सव बन जाता है।

तीन अंकों और दस दृष्यों (३५५) के प्रस्तुत नाटक का कथानक नया, सरल, सहज, गतिशील और नाटकीय है। रंगकर्म के लिए यह नये आयाम प्रस्तुत करता है कि छाया प्रकाश के द्वारा मंच पर चल रहे अनेक दृष्यों को प्रासंगिक आवश्यकता के अनुसार प्रकट या ओझल करता है। पुरुष पात्र के रूप में दृष्यों एवं पात्रों के बीच में खड़ा हुआ सूत्रधारी नाटककार दर्षकों को सम्बोधित करके सम्पूर्ण सहभागिता (टोटल पार्टिसिपेशन) का अवसर भी देता है। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और धार्मिक आधार पर जीवन यथार्थ को प्रतीक बद्ध करता हुआ, नये जीवन सन्दर्भों को जोड़ने वाला यह कथानक प्रभावशाली ढंग से संप्रेषक है।

संक्षेप में नाटक की कथा इस प्रकार है :

गंगामाटी गांव की एक अनाथ ब्राह्मण लड़की गंगा है जो शिक्षित प्रगतिशील एवं उदार विचारों वाली है। लेकिन गांव रूढ़िवादी है। वहां शिवानंद नामक पुजारी पुरोहित धर्म व्यवस्थापक और न्यायधीष बनकर अपने उच्छृंखल बड़े लड़के देवल के साथ गंगा का विवाह करके मानों उसे दंड देता है। देवल पिता के पूजा-उपासना वाले धर्म का विरोधी था पर पिता से सदा दंड या उपेक्षा पाता था। विवाह के बाद वह यांत्रिक साधना के लिए श्मशान में रहने लगा और प्रायः विकृत मस्तिष्क वाला होकर सिद्धि प्राप्ति के लिये कुमारी कन्या की बलि देने की योजना बनाया करता। वह पिता की कठोरता के विरुद्ध एक प्रकार का विद्रोह कर रहा था। शिवानन्द का विरोध उसका छोटा पुत्र कमल भी कर रहा था और गंगा भाभी का समर्थक था। वह

भाभी पर हो रहे अत्याचार का भी विरोधी था और इसी कारण उससे सहानुभूति रखता था। गांव के छुआछूत और चन्दरा के अपनी पत्नी सीता को पीटने को भी वह बुरा समझता था।

षिवानन्द से सारा गांव दबता था। चन्दरा चमार को भी उनका नियामक रूप स्वीकार था। उससे सीता के पिता ने कभी ऋण लिया था जिसे चुका न सकने के कारण वह अपनी बेटी को ही चन्दरा को दे गया था। चन्दरा सीता को पत्नी बनाकर भी बहुत मारा करता था। गांव के लड़के मनोहर और कमल तथा गंगा का विरोध भी सीता की रक्षा नहीं कर पाते थे। एक बार सीता घर से भागने लगी तो चन्दरा ने उसे पकड़ लिया और लाठी से मारने लगता तो गंगा ने बचा लिया।

गंगा सब प्रकार के अत्याचार पूर्ण संगठनों और भेदभावों से ऊपर सहज जीवन की आकांक्षिणी थी। उसकी इच्छाओं और क्रियाओं में उसकी छोटी बहन कुसुम भी सहायक थी और अपनी बहन के साथ ही षिवानन्द के घर में रहती थी। वह अल्हड़ चंचल किषोरी एक दिन सो रही थी कि अवसर पाकर देवल उसकी बलि देने के उद्देश्य से हत्या करने आया। ठीक समय पर पास ही सोई हुई सीता की नींद खुल गई, उसने शोर मचाकर कुसुम की जान बचा ली। देवल की शक्तिसाधना अधूरी रह गई। वह पागल होकर भाग गया। इधर कुसुम इस घटना से बहुत क्रुद्ध थी। वह और सीता देवल पर हत्यारा होने का अभियोग लगा कर जो अपवाद फैला रहीं थीं वह षिवानन्द को असह्य था। षिवानन्द ने सीता को चन्दरा के ऋण से मुक्ति और सुखी दाम्पत्य जीवन के आष्वासन का प्रलोभन देकर चुप करवा दिया पर कुसुम उत्तेजित ही रही।

इसी बीच देवल को षिवानन्द ने वष में कर लिया और लोकापवाद से बचाने के लिए वेष विन्यास बदलकर सिद्ध महात्मा बना दिया। इस साधु बाबा के दर्शनों को गंगामाटी का गांव उमड़ पड़ा और चमत्कार से प्रभावित होकर चढ़ावा चढ़ाने लगा, लेकिन गंगा देखते ही पहचान गयी। देवल और षिवानन्द की पोल खुल न जाये इसलिए गंगा को चुप कराना जरूरी था। देवल अब आज्ञाकारी पुत्र बनकर चुप हो ही चुका था, अतः षिवानन्द ने यह उपाय सोचा कि गंगा और कुसुम को बाबा का आदेश बताकर तीर्थयात्रा पर भेज दिया जाये। और यही किया गया।

कमल गांव से शहर को पढ़ने के लिए जा चुका था। जब वह लौटा और भाभी तथा कुसुम को अनुपस्थित पाकर पूछने लगा तो सीता ने रहस्य खोल दिया। कमल ने भी साधु बने हुए देवल को पहचान लिया। विह्वल दोनों भाई मिले। देवल ने अब पिता के पाखंड का खंडन करके अपना अपराध स्वीकार कर लिया तो षिवानन्द उसका गला दबोचने लगे। गांव के एक व्यक्ति मालिकसिंह ने उसकी जान बचाई।

गंगामाटी गांव का एक कल्लू नामक किसान पुजारी षिवानन्द के कहने से देवी के मन्दिर में भजन गाया करता था और देवीप्रसादी के नाम से जाना जाता था। षिवानन्द के पाखंड से वितृषित होकर यह पुनः किसानी करने लगा। वह गंगा का भक्त भी था। निर्वासिता गंगा और कुसुम ने दूसरे गांव में उसी के घर शरण ली थी। कल्लू कुसुम को चाहने भी लगा था। कमल ने भाभी को ढूँढ निकाला और षिवानन्द की आज्ञा के विरुद्ध गंगामाटी गांव के एक विस्मृत और निषिद्ध उत्सव "जिया हो" के पुनः आयोजन की तैयारी की।

उपेक्षित और लांछित देवल को सीता चमारिन से संरक्षण मिला था, इसलिये गांव वाले उसे भी अछूत कहने लगे थे। षिवानन्द ने गंगा द्वारा शूद्रों के साथ मिलकर 'जियाओ' मनाने के विरुद्ध भी उन्हें भड़काया, पर मालिकसिंह नामक व्यक्ति न माना। 'जिया हो' का संगीत शुरू होते ही लोग उस ओर चल पड़े। षिवानन्द बौखलाहट में कृपाण लेकर मारने दौड़े पर रोक

दिये गये और 'जिया हो' के माध्यम से लोगों ने पुनः सरल, सहज जीवन और मानवधर्म का दर्शन किया। इस प्रकार गंगा ने सिद्ध कर दिया कि जाति, कुल और धर्म के संगठनों ने जो मानव को मानव से काट दिया था उस अलगाव और अभाव की जगह जीवन को अकुंठित भाव से जीने में ही सार्थकता है।

इस नाटक में जितने भी पात्र आते हैं, उनका चरित्र प्रतीकात्मक होते हुए भी सहज जीवन्त है। वे गांव के होकर भी हमारे आसपास के यथार्थ व्यक्ति हैं जिनके गुणदोष, संस्कार, भय, विचार, विष्वास एवं जिजीविया उन्हें एक सम्पूर्णता प्रदान करती है। वे अपना जीवन स्वयं जीते हैं।

नाटक में व्यंजित गांव का वातावरण और उसकी प्रकट व्यवस्था नाटक को विष्वसनीय ठोस धरातल देते हैं जिसमें चरित्रों का क्रिया-कलाप नाटक को कार्यशीलता देता है। इसमें प्रतीकों के द्वारा जो रूपतामक संरचना हुई है, उससे इसका अर्थ और प्रभाव पूर्ण नाटकीयता लिये हुए है। गाँव का वातावरण होने के कारण आंचलिक गीत भी प्रासंगिक हैं, पर सबसे प्रभावशाली अंश है शैली में निहित व्यंग्य जो जीवन की विडम्बना को प्रस्तुत करके गहरी चोट करता है।

प्रस्तुत नाटक पूर्णतः अभिनेय है। यह नाटक प्रकाश-संयोजन वाले रंगमंच का है क्योंकि इसमें एक साथ कई दृष्य चल रहे हैं जिन पर बारीबारी से प्रकाश डालकर नाटकीयता उजागर की गई है। इस गुण के कारण इसके प्रभाव की भी वृद्धि हुई है। रंगमंचीय होने के साथ साथ यह नाटक एक श्रेष्ठ साहित्यिक कलाकृति है। नाटककार और दर्शकों का पूर्ण सहभागी बनकर इस लीला नाटक को देखना नाटक की विषिष्ट उपलब्धि है।



## नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल

लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण नाटककार, कथाकार और साहित्य के विभिन्न अंगों के मर्मज्ञ ओर कला चिन्तक हैं। इन्होंने मौलिक साहित्य सृजन के साथ ही साथ मौलिक जीवन चिन्तन में महत्वपूर्ण योग दिया है।

जयषंकर 'प्रसाद' के बाद मोहन राकेश और लक्ष्मीनारायण लाल ही वे दो नाटककार हुए हैं जिन्होंने सही और सम्पूर्ण अर्थों में हिन्दी नाट्य को आधुनिक बनाया। विशेषकर लाल का नाम इसलिए सर्वाधिक उल्लेखनीय है कि इन्होंने अपने नाटकों द्वारा एक ओर भारतीय रंगमंच की जीवंत परम्पराओं, प्रेरणाओं को अपने नाट्य लेखन में नये संदर्भ दिये तो दूसरी ओर इन्होंने पश्चिम के 'नाट्य' को, उसके रंगमंच की प्रकृति को गहराई से समझकर देखा है। इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य के समन्वय के विष्वास का खंडन किया है। इनका कहना है कि पूर्व और पश्चिम का भी कभी समन्वय नहीं हो सकता, विशेषकर कला और साहित्य सृजन के क्षेत्र में।

**जीवन परिचय :** लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म चार मार्च उन्नीस सौ सत्ताइस में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के एक गांव—जलालपुर में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गांव के स्कूल में और हाई स्कूल, इन्टरमीडिएट शिक्षा बस्ती शहर में प्राप्त की। प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी में (1950) एम0ए0 और 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि' पर सन् बावन में डाक्टरेट किया।

इसके बाद प्रयाग विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों में अध्यापक होकर विश्वविद्यालय की उच्च स्तरीय शिक्षा और अनुसंधान कार्य में महत्वपूर्ण योग दिया। इस बीच कुछ दिनों के लिए आकाषवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर रहे। आपने उन्नीस सौ चौसठ में विश्व नाटक सम्मेलन रुमानिया में भारतवर्ष की ओर से अकेले नाटककार के रूप में प्रतिनिधित्व किया। आप नेशनल ग्रीक थियेटर, एथेन्स में भी आमंत्रित किये गये।

इलाहाबाद में नाट्य केन्द्र 'स्कूल आफ ड्रामेटिक आर्ट्स' की स्थापना और इनके द्वारा उसके संचालन और निर्देशन ने हिन्दी क्षेत्र में नाटक और रंगमंच के प्रति लोगों में गहरी रुचि पैदा की। अनेक अभिनेता, निर्देशक 'नाट्यकेन्द्र इलाहाबाद' से रंग संस्कार और प्रशिक्षण लेकर हिन्दी रंगमंच क्षेत्र में कार्यरत हुए।

दिल्ली में 'संवाद' रंगमंच संस्था निर्माण कर और दिल्ली विश्वविद्यालय में एम0ए0 हिन्दी के पाठ्यक्रम में नाट्यक्रम और रंगमंच का प्रशिक्षण और अध्यापन कर डा0 लाल ने राजधानी में गंभीर कार्य किया।

## कृतियाँ

‘मादा कैक्टस’ नाट्यकृति के साथ लाल ने हिन्दी नाट्यक्षेत्र में पदापर्ण किया। इसके पूर्व कुछ एकांकी लिखकर अपने विद्यार्थी जीवन से ही इन्होंने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया—विशेषकर डाक्टर रामकुमार वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र और उपेन्द्रनाथ ‘अष्क’ का ध्यान। विद्यार्थी जीवन में लिखे हुए वे एकांकी नाटक क्रमशः ‘ताजमहल के ऑसू’ और ‘पर्वत के पीछे’ एकांकी संग्रहों में संग्रहीत हैं।

‘मादा कैक्टस’ डा० लाल का पहला नाटक है जिसमें कैक्टस पौधे का यह प्रतीक लेकर कि मादा पौध के सम्पर्क में आने से नर पौधा सूखने लगता है, लेखक ने नर-नारी के सामाजिक सम्बन्धों की सार्थकता-निरर्थकता को प्रस्तुत किया है। एक चित्रकार है अरविन्द जो अपनी पत्नी सुजाता को इसलिए छोड़ देता है कि उसका सम्पर्क इसकी कलासाधना को निस्सार बनाने वाला है ; लेकिन वही जब एक और युवती मीनाक्षी से प्रेम करने लगता है परन्तु सम्बन्धों के स्थायित्व से कतराता है तो उसकी निरर्थक कलासाधना को एक विडम्बना के रूप में नाटक में उभारा गया है। अरविन्द के मित्र सुधीर की जीवन्त उन्मुक्कता, पिताजी का संयत व्यंग्य तथा नौकर गंगाराम की आत्मीयता ये तीनों मिलकर अरविन्द के व्यक्तित्व के लिए अच्छा नाटकीय वैषम्य बने हैं। सुधीर की बन्द मुट्ठी में अबूझी वस्तु से ‘मादा कैक्टस’ नाटक की आरम्भ से ही ध्यानाकर्षण सफल रही है। मादा कैक्टस का प्रतीक नया और सटीक है। रंगमंच और षिल्प की दृष्टि से भी इसकी सफलता असंदिग्ध है क्योंकि इसमें आधुनिक नाट्य विधि का अच्छा उपयोग हुआ है। आकाषवाणी मंच इलाहाबाद द्वारा सन् 1956 में इसका पहला सफल प्रदर्शन होने के बाद अन्य अनेक प्रदर्शनों से इसकी नाटकीय संभावनाएँ और अभाव भी उजागर हुए हैं। इन्हें लक्ष्य करके लाल ने नाटक के नये संस्करण में संशोधक ‘स्पर्ष’ भी किये हैं।

नाट्य केन्द्र इलाहाबाद के जीवन काल में लाल ने ‘सुन्दर रस’, ‘रातरानी’, ‘तोता-मैना’, ‘दर्पन’, और ‘रक्त कमल’ नाटकों की रचना की। ये नाटक पूरे हिन्दी क्षेत्र में प्रस्तुत होने लगे। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली की प्रसिद्ध नाट्य संस्थाओं जैसे अनामिक (कलकत्ता), थिएटर यूनिट (बम्बई) आदि ने इन नाटकों को प्रस्तुत किया।

‘रातरानी’ आदर्शवादी समस्या प्रधान नाटक है। इसमें अधिकतर प्रिय पुरुष और समर्पिता किन्तु निजी व्यक्तित्व की रक्षा में लगी नारी है। आधुनिक जीवन संदर्भ को तान्त्रिक परिवेष के अयथार्थ से मिथकीय रूप देकर रहस्योद्घाटन करने की जागरूक चेतना इस नाटक में मिलती है। हमारे जीवन में धर्मभय, मृत्युभय, पापभय आदि का कुछ दबाव है कि एक ओर तो यह जड़ विश्वास और अंधी आकांक्षाओं को जन्म देता है और दूसरी ओर निरंकुष शक्तियों को—ये धार्मिक भी हो सकती हैं, सामाजिक भी और राजनीतिक भी। नाटक में तन्त्र साधना, चर्यागीत, बीजाक्षर और मन्त्रों का सोद्देश्य प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है जिनसे पलायन, अप्रसंगिकता और रहस्य की सृष्टि की गई है। कलंकी नगर के अतीत में हूणों के भयानक उत्पात का संदर्भ देकर ऐसे सीधे सादे नागरिक बनाये गये हैं जिन्हें एक शासक या नेता की जरूरत है। इन जड़ नागरिकों में जीवनबोध नहीं, मात्र अस्तित्व बोध है। ये निरक्षर, आलसी, अंधविश्वासी, भयभीत और आदिम मनोभावों वाले लोग हैं, जिनका लोकधर्मी जीवन दिखाने के लिए गायन-वाद, दर्शन, इतिहास, पुराण, गाथा और कर्मकांड—इन सबका एक बिन्दु पर समायोजन किया गया है।

‘मिस्टर अभिमन्यु’ नाटक में मनुष्य की नियति की विडम्बना प्रस्तुत की गई है। व्यवस्था के चक्रव्यूह में फंसा हुआ आज का मनुष्य अभिमन्यु जैसा ही है लेकिन वह महाभारत के अभिमन्यु से भिन्न है। वह अभिषप्त है। वह चक्रव्यूह में शौर्य प्रदर्शन के लिए नहीं घुसता और न तो उसे तोड़कर वीरगति का परमपद पाता है। नाटक का नायक एक कलक्टर राजन है

जो व्यवस्था को नापसंद करते हुए उसे छोड़ना चाहते हुए भी नहीं छोड़ पाता। उसका अन्तःसंघर्ष ही उसका चक्रव्यूह है। यह चक्रव्यूह उसके माध्यम से आधुनिक मनुष्य का है। हर व्यक्ति ऐसे किसी न किसी चक्रव्यूह से घिरा हुआ है जिससे बाहर निकलने की पर्याप्त इच्छा और संकल्प उसके पास नहीं है। उसकी त्रासदी यह नहीं कि वह अभिमन्यु है, बल्कि यह है कि वह अभिमन्यु नहीं है। 'वह मिस्टर अभिमन्यु' है। रूपक का ऐसा सार्थक प्रयोग प्रस्तुत नाटक की विशेषता है। पौराणिक चरित्र को नये मंच पर नये संदर्भ में रखकर वर्तमान युग की विडम्बना का उद्घाटन हुआ है। इसमें दो युगों की दो स्थितियों का अन्तर रखकर भी आधुनिक त्रासदी उजागर होती है। इसमें डा० लाल ने अपने समाज से प्रश्न करने का सबसे सार्थक और साक्षात् माध्यम इस्तेमाल किया है। राजन के शत्रु भीतरी द्वन्द्व और बाहरी व्यक्ति तथा व्यवस्था है जो उसे व्यूह छोड़ने को उकसाते हुए भी घेरते रहते हैं। दो राजनीतिज्ञ, राजन की पत्नी और पिता तथा एक संभ्रान्त अफसर की बीवी राजन की लाचारी और निरीहता को प्रस्तुत करते हैं। राजनीति का भ्रष्ट तन्त्र और उसमें नौकरशाही को फंसाये रखने का षड्यन्त्र वर्तमान व्यवस्था का एक और आयाम है जिस पर यह नाटक चोट कर खोखलेपन को भी समझा देता है।

हमारे समसामयिक समाज में मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध सीमाओं में रहकर ही बनते और पलते हैं। सारे जीवन पर मानो अनेक प्रकार के कफर्यू लगे हुए हैं जिन्हें तोड़कर बाहर आने का साहस किसी में नहीं है—इस थीम को लेकर 'कफर्यू' नाटक लिखा गया है। जीवन का सबसे अन्तरंग सम्बन्ध (विवाह या प्रेम विवाह से बना पति-पत्नी का सम्बन्ध) भी थोड़ी सी पहचान का कफर्यू लगाकर निकट रहने की कृत्रिमता या विवषता या फिर ढोंग बन कर रह जाता है। नाटक के बाहरी परिवेश में उपद्रव को दबाने के लिए शहर में लगे कफर्यू के माध्यम से जीवन के 'रॉयट' और कफर्यू का प्रतिबिम्ब और प्रसाद दिखाते हुए इसमें गौतम और कविता नामक एक दम्पति, मनीषा नामक एक उन्मुक्त युवती और संजय नामक अभिनेता के सम्बन्धों में घिर आई पाबन्दियों का असहज यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। इसी बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक कफर्यू में जीवन शक्ति की अभिव्यक्ति के लिये व्यक्ति सहसा अपराध (रॉयट) कर बैठते हैं क्योंकि वे भीतर की वर्जनाओं को तोड़ना चाहते हैं। नाटकीय घटना के रूप में गौतम मनीषा और संजय-कविता का एकान्त सहवास वास्तविक सम्बन्धों की तलाष बनता है और गौतम-कविता के नये दाम्पत्य की बुनियाद डालता है। सहज, निर्बन्ध और एक प्रकार से उच्छृंखल, प्राकृतिक देह-सम्बन्धों को स्वीकार करते हुए इस नाटक में तथाकथित वर्जनाओं के विरुद्ध जैविक आवश्यकताओं की साहसपूर्ण स्वीकृति भी है। नाटक का कई बार सफल प्रदर्शन इसके नाटकीय प्रभाव को रेखांकित करता है। पहले के सभी नाटकों से यह अधिक नाटकीय है।

'अब्दुल्ला दीवाना' मूर्ति-भंजक और तिलमिलाने वाला व्यंग्य नाटक है। राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ व्यवस्था और नैतिकता के पाखंडों को निर्भीकता से तोड़ने वाले इस नाटक में डा० लाल अद्भुत रूप से अभावुक और निर्मम हैं। आजादी मिलने के बाद हमारे देश की चेतना (अब्दुल्ला) किस प्रकार मारी गई या यदा-कदा पुनः सिर उठाते ही मारी जाती है, उसे ही यह नाटक बेझिझक खोल देता है। महत् मूल्यों के अब्दुल्ला की जगह जो ढोंग, अवसरवाद और स्वार्थ सिद्धि का समाज उभरा है वह सुविधाप्रिय पशु समाज है जिसका समूचा अस्तित्व कैसर ग्रस्त है। नाटक के सारे चरित्र नाटक का भ्रम जैसा पैदा करके मानो समाज (या दर्शकों) से ही इसके लिये अभियोग लगाते हुए सवाल करते हैं। इस तरह यह नाटक अलग, मंच का खेल या मनोरंजक तमाषा न रहकर, जनता के बीच आ जाता है और उससे सीधे संवाद करता है। यह नाटक लाल की प्रतिभा की एक नई और प्रखर पहचान कराता है।

डा० लाल का 'व्यक्तिगत' नाटक स्वातन्त्र्योत्तर भारत के जीवन नाटक को एक बहुआयामी पात्र 'मैं' के माध्यम से प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसा 'मैं' है जो हमारी राजनीति, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था और उनकी शक्तियों से पैदा हुआ है। यह पूंजीपति, नेता और भोक्ता सब कुछ है जिसका जीवन केवल शोषण करना ही है। वह रचना नहीं जानता, जीना नहीं जानता, सिर्फ होता है। लेकिन एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जगह वह दर्पण के टूटे हुए टुकड़ों जैसा हो जाता है, जिससे शुद्ध 'मैं' की बजाय 'मैं' के खण्डित प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत नाटक में मंच के लिये खुलापन और सूक्ष्म प्रतीक के कारण अनेक संभावनाएँ हैं।

'नरसिंह कथा' में निरंकुष सत्ता के विरुद्ध प्रजातांत्रिक मूल्यों का संघर्ष और विजय प्रदर्शित है। यहाँ 'मिस्टर अभिमन्यु' से भिन्न पद्धति अपनाकर पौराणिक कथा की प्रासंगिता खोजी गई है। जहाँ पूर्वोक्त में अभिमन्यु के प्रतीक आधुनिक अभिमन्यु का संघर्ष और विकल्प दिखाया गया है वहाँ प्रस्तुत नाटक में पौराणिक कथा को ही आधुनिक संदर्भ में पहचानने का प्रयत्न हुआ है। आध्यात्मिक मूल्यों की बजाय इसमें राजनीतिक मूल्यों की तलाश की गई है। स्वतंत्रता निरंकुष हो जाने पर परम विकृति में बदल जाती है। आत्म-समर्पण और विष्वातमा के साथ मिलन में जो स्वतन्त्रता मंगलमय और मानवीय होती है, वही स्वार्थी होकर अहंकार ग्रस्त एवं परम हिंसक हो उठती है। लाल के अनुसार इसी अर्थ में हिरण्यकशिपु मर-मर कर फिर अधिनायकवाद के रूप में जी उठता है और मानव स्वतन्त्रता को राग-द्वेष रहित होकर उससे युद्ध करना पड़ता है। आज इसी प्रकार "पुराण कथा, पौराणिक चरित्र, पुराण की घटनाएँ हम फिर से भोग रहे हैं। अपने समय में, अपने अर्थों में। यहां पुराण तत्व जीवन तत्व हो गया है।" यही इस नाटक का विषय और जीवन दृष्टि है।

नाट्य स्वरूप, रंगशिल्प और प्रभाव की दृष्टि से एकदम आधुनिक नाटक है लाल का 'एक सत्य हरिष्यन्द्र'। नाट्य वस्तु, कथ्य और रंगशैली का अपूर्व संयोग दिखाने वाला यह नाटक शुद्ध भारतीय आधुनिकता का स्वरूप है। भारतेन्दु हरिष्यन्द्र के 'सत्य हरिष्यन्द्र' की कथावस्तु और नाट्य सामग्री से भिन्न डा० लाल ने इसमें राजनीति का आधुनिक संदर्भ और अर्थ खोजा है। नौटंकी पद्धति से हरिष्यन्द्र की पौराणिक कथा का प्रतीकात्मक गुम्फन नाटक को पैनापन और चुनौती भरा व्यंग्य प्रदान करता है। संस्कृत नाट्यशैली के देशकाल और परिवर्तन, कार्य का आरोहावरोह और वर्तुलाकार प्रत्यावर्तन को सर्जनात्मक ढंग से प्रयोग करके डा० लाल ने अपनी आधुनिकता को परम्परा की प्रासंगिकता में सिद्ध कर दिखाया है। गांव में चुनाव लड़ने वाले दो प्रतिद्वन्द्वी कुल, जाति, धर्म और लोक-विश्वास का कैसा उपयोग-दुरुपयोग करके मतदाताओं को मूर्ख बनाते हैं इसे सत्यनारायण की कथा के प्रतीकात्मक संदर्भ में रखकर डा० लाल ने इसमें राजा हरिष्यन्द्र सम्बन्धी अन्धविश्वासी धर्म की ओर हिंसा का यथार्थ नाटक दिखाया है। सत्ताधारी देवधर बाबू प्रतिद्वन्द्वी लौका के राजनीतिक प्रभाव को समाप्त करने के लिये जब उसी के धार्मिक कार्य और हरिष्यन्द्र नाटक में षड्यन्त्र करके घुसते और अभिनेता बनते हैं तो यह भूल जाते हैं कि काषी की प्रजा या नाटक के ग्रामीण दर्षक उल्टे मुझे ही सत्ता-च्युत कर सकते हैं। नौटंकी के रूप में हरिष्यन्द्र सम्बन्धी संदर्भ और उसका लोकगायन पारम्परिक भाषाशैली वाली कला के अतिरिक्त विचार और दर्षन के धरातल पर भी यह नाटक अद्वितीय है।

डा० लाल का 'सूर्यमुख' नाटक मंच पर तो उन्नीस सौ बहत्तर में खेला गया था, लेकिन उसके पाठ का संशोधित संस्करण उनके अन्तिम नाटक 'यक्ष प्रश्न' के बाद आया है। भागवत पुराण के आधार पर महाभारत के बाद की यदुवंशीयों की आत्म-घातिनी लीला का कथा-प्रसंग लेकर लाल ने मिथक तत्व का कौशल से प्रयोग इस नाटक में किया है। ऊपर से

पौराणिक नाटक दिखाते हुए भी इसमें दृष्टि मानव-सत्य को तलाश करने वाली आधुनिकता है। 'सूर्यमुख' प्रतीक है जिसके द्वारा कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और पत्नी वेनुरती का अवैध (?) प्रेम दिखाते हुए दोनों को आत्मसाक्षात्कार की ओर उन्मुख किया गया है। क्रान्तिचेता कृष्ण के बाद उन्हीं का पुत्र प्रेम के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति करता है कि अपनी धर्ममाता को माता नहीं, नारी के रूप में देखता है। महाभारत के धर्मयुद्ध के बाद यदुवर्षियों का भोग-अधिकार, लूटपाट और बलात्कार अन्धकार ग्रस्त युद्ध में बदल जाता है, जिसमें प्रद्युम्न और वेनुरती का प्रेम ही प्रकाश की अन्तिम किरण है। लेकिन उन्हें भी संशय और भय ही सताता रहता है। आज के परिवेश में राज्य लिप्सा के लिये लड़ने और जीने वाले लोग टुकड़ों पर झपट रहे हैं, यह सन्दर्भ भी खोजा जा सकता है।

'यक्ष प्रज्ञ' डा० लाल के नवीनतम दो लघु नाटकों—'उत्तर युद्ध' और 'यक्ष प्रज्ञ'—का संग्रह है। 'उत्तर युद्ध' बहुत छोटा है, जबकि यक्ष प्रज्ञ उससे लगभग ड्योढ़ा है। दोनों नाटकों की कथा पाण्डवों के वनवास काल से सम्बन्धित है। दिल्ली की नाट्य संस्था 'नॉन ग्रुप' द्वारा दोनों नाटकों का एक ही दृष्यबन्ध पर प्रस्तुतीकरण यह भ्रम पैदा करता है कि 'उत्तर युद्ध' 'यक्ष प्रज्ञ' का पूर्वार्द्ध है, लेकिन बात ऐसी नहीं है। पाण्डव-वनवास की कथा से जुड़े होने और दोनों कृतियों में पाण्डवों के प्रस्तुत प्रश्नों से कतराने की मनोभावना वाला साम्य होने पर भी मेरी दृष्टि से दोनों स्वतन्त्र कृतियाँ हैं। उत्तर युद्ध की कथा बहुत संक्षिप्त है। स्वयंवर के बाद पाई हुई द्रौपदी को पाँच पाण्डव कैसे बांटें, यही इसकी प्रकट समस्या है। लेकिन डा० लाल ने द्रौपदी को शक्ति का प्रतीक बनाकर पाण्डवों को दुःशासन (भ्रष्ट सत्ता) और दुर्योधन (भ्रष्टों का सैन्य बल) के विरुद्ध विद्रोह और युद्ध के लिये उकसाया है। विदूषक के नवीन प्रयोग के द्वारा अतीत को वर्तमान से जोड़कर आधुनिक व्यक्ति पर व्यंग्य भी किया गया है कि उसके सामने प्रजातांत्रिक शक्ति का निरंतर अपहरण हो रहा है और वह मौन, निष्क्रिय या मात्र बहसों (उत्तर-युद्धों) में उलझा हुआ है। नाटक का प्रारम्भ और अन्त पाण्डवों के मौन से और अंत में बेसहारा अपहृत द्रौपदी की असमर्थ चीख से दिखाना बड़ा सषक्त प्रभाव डालता है।

'यक्ष प्रज्ञ' इससे भी सषक्त कृति है जिसमें महाभारत के यक्ष को समय का प्रतीक बनाकर पाण्डवों/दर्षकों/पाठकों से सीधे सवाल किये गये हैं। हर व्यक्ति समय की अबाध धारा में अपने समसामयिक/वर्तमान के लिये उत्तरदाता होता है, चाहे वह साहित्यकार हो या सामान्य मनुष्य। जो इन प्रश्नों की चुनौती नहीं झेलते और अपने अहं में ही डूबे रहते हैं वे चार पाण्डवों की तरह मर जाते हैं लेकिन युधिष्ठिर जैसे उत्तर देकर-अपने अलावा दूसरे को भी महत्व देने से-अमर हो जाते हैं। डा० लाल भी इन प्रश्नों से जूझे हैं। यक्ष बनकर वे प्रज्ञाकुल खड़े हैं, सारे प्रज्ञ उनके विभिन्न अनुभवों के प्रतिनिधि हैं और उत्तर के रूप में वे नाटक से बाहर आ जाते हैं। शिल्प, दृष्यानुभूति, नाट्य चिंतन और नाट्यकथा सभी दृष्टियों से यह लघु नाटक लाल की सर्वोच्च कृति है।

मौलिक नाट्य रचना के साथ-ही-साथ रंगमंच प्रदर्शन, निदधन से गहरे रूप में सम्बन्ध रहने के कारण लाल ने रंगमंच अनुसंधान क्षेत्र में तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ दिये—'रंगमंच और नाटक की भूमिका', 'पारसी हिन्दी रंगमंच', 'हिन्दी रंगमंच और नाटक'।

उन्नीस सौ सत्तर में दिल्ली विष्वविद्यालय की नौकरी छोड़कर तथा कुछ दिनों 'नैशनल बुक ट्रस्ट' में सम्पादक रहने के बाद अब गत कई वर्षों से लाल स्वतन्त्र लेखक हैं। नाटक के अलावा कथासाहित्य के क्षेत्र में भी आपने महत्वपूर्ण कृतियाँ दी

हैं। अब तक आपकी लगभग साठ-सत्तर कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनका अधिकांश 'सूने आंगन रस बरसै', 'नये स्वर नयी रेखायें', 'एक बूँद जल', 'एक और कहानी', तथा 'डाकू आये थे' नामक पाँच संग्रहों में आ गया है। आपकी औपन्यासिक कृतियों में 'मनवृन्दावन', 'प्रेम अपवित्र नदी', 'हरा समन्दर गोपी चन्दर', 'श्रृगांर', 'देवीना' बहुत प्रसिद्ध हैं।

गंगामाटी

चरित्र

गंगा

देवल

कमल

षिवानंद

प्रसादी

कुसुम

सीता

मालिक

गोसांई

शंभू

मनोहर

चंदरा

दो तांत्रिक और पुरुष

स्थान : गंगामाटी गांव

समय : वर्तमान

**पहला अंक**



## पहला दृष्य

{ गंगामाटी गांव के मंच पर विभिन्न स्थलों में ये दृष्य एक साथ हो रहे हैं—पर क्रमशः प्रकाश से आलोकित पहला दृष्य—दो तांत्रिक बैठे पढ़ रहे हैं, ओंम ह्रीं श्रीं क्लीं एं सौं हृदयाय नमः। ओंम देवतायै नमः हृदि। दूसरा दृष्य—षिवानंद देवी दुर्गा की मूर्ति के सामने आरती कर रहे हैं। तीसरा दृष्य—चंद्रा अपनी पत्नी सीता को मार रहा है। चौथा दृष्य—प्रसादी गा रहा है। }

जय जय माता भवानी जगदंबे।

माता के भवन बना नौरंगा

अन्तर भीतर बहै गंगे।

सातो बहिनी झूला झुलावै

हनुमत चवरं डुलंगे।

ठाढ़े महादेव आरती सजावै

लिए पारबती संगे।

जय जय माता भवानी जगदंबे.....

{ पांचवा दृष्य—देवल गंगा को खींचे लिए जा रहा है जहां पंचायत बैठी है। कमल चुपचाप खड़ा देख रहा है। एक अन्य पुरुष दर्षक इन सारे दृष्यों से अलग खड़ा अपने आप से बातें करने लगता है। }

पुरुष : यह सब क्या देख रहा हूं ? कब से चल रहा है ? इसका केन्द्र कहाँ है ? किस शक्ति से यह सब संचालित हो रहा है ? किस सिद्धि के लिए मंत्र पढ़े जा रहे हैं ? यह क्या.....क्यों हो रहा है ? यह विष्वास कहां मिला इन्हें ? क्यों मार रहा है ? कौन है मारनेवाला ? क्यों चुपचाप सहती चली जा रही है मार ?.....तुम लोग अछूत हो ? देवी मंदिर में प्रवेश मना है ? अब भी ? ऐसा ? ओह ! एक साथ इतना सब नहीं देख सकता। कुछ समझ में नहीं आएगा। जाओ.....मेरी आंखों से विलीन हो जाओ। यहां से शुरू करूं ? देखूं इस पंचायत में क्या होने जा रहा है ? सुनने दो ? यह देवीप्रसादी क्या गा रहा है ?

{ सारे दृष्य हट जाते हैं। केवल पंचायत बैठी दिखती है। देवीप्रसादी वही गीत गा रहा है—जय जय माता भवानी जगदम्बे.....। गंगा को खींचते हुए देवल आता है। देवीप्रसादी का संगीत टूट जाता है। वह चला जाता है। }

देवल : (पंचायत के सामने).....यह रही गंगा ! ब्राह्मण कुमारी कन्या, इस माटीगांव की कलंक ! चार अक्षर पढ़ क्या लिया शास्त्रार्थ करती है। कहती है—क्या इस गांव की स्त्री लोहे की मषीन है जो तुम्हारे यंत्र नियम के अनुसार चलेगी ? मैं जो सही समझती हूं, करूंगी।

मालिक : वाह ! यह हिम्मत !

गोसांई : बता वह कौन था बांसुरी वाला, जिसका संगीत सुनने गयी थी।

शंभू : ब्राह्मण कन्या, चमारों.....शूद्रों के घर उठती—बैठती है।

देवल : लोगों ने आंखों देखा है—उनके हाथ का छुआ खाती पीती है।

शंभू : राम राम राम ! हद कर दिया इसने !

देवल : बड़ा घमंड है इसे। रूप का, दिमाग का।

गोसांई : न आगे नाथ न पीछे पगहा.....बिल्कुल आजाद है।

मालिक : इसका बाप क्या कम था, इसका बाबा क्या कम था ? याद है, जियाहो की पूजा में इसके बाबा ने शूद्रों का पक्ष लिया था।

{ षिवानन्द आते हैं सब उठकर प्रणाम करते हैं }

मालिक : अच्छा हुआ आप आ गये। देखिए बड़ी मुष्किल से पकड़ में आयी है। अब आप ही कीजिए न्याय। नहीं तो गांव पर, खासकर हमारे बाल-बच्चों पर इसका क्या असर पड़ेगा !

कमल : जहां पंच नहीं, वहां न्याय कैसा ? जहां पहले से ही फैसला कर कपट जाल बुन लिया गया हो किसी गरीब, निर्दोष विवष को फंसा लेने के लिए.....

मालिक : वकील बनकर आये हो इसका ?

कमल : आप लोग किसके वकील हैं ?

{ विराम }

मालिक : पुजारी जी आपका क्या विचार है ?

षिवानन्द : गांव की मर्यादा पर जब ऐसा संकट हो, तो हमें संयम से काम लेना होगा। मेरा विचार है, जब कोई सीमा से बाहर जाने लगे तो बढ़कर उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। हमें उदार होना पड़ेगा।

मालिक : आपके विचार उत्तम हैं।

गोसांई : सही है।

षिवानन्द : इसके मां बाप नहीं हैं। एक तरह से यह अनाथ ब्राह्मण कन्या है। हमें चाहिए, इसकी शादी कर दें।

शंभू : इसने अपनी इतनी बदनामी कर ली है, कौन ब्राह्मण इसे अपनी बहू बनाने को तैयार होगा ? क्यों पंचों, कोई ऐसा है जो गंगा को.....मेरा मतलब.....जो है सो कोई....।

{ सन्नाटा }

षिवानन्द : गांव हित के लिए मैं तैयार हूं गंगा को अपनी बहू बनाने के लिए।

मालिक : धन्य हैं, धन्य हैं महाराज। इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है ?

{ सब वाहवाही करते हैं }

षिवानन्द : मैं अपने ज्येष्ठपुत्र देवल के साथ गंगा का विवाह स्वीकार करता हूं।

कमल : मतलब गंगा के अपराध का दण्ड यही है ?

मालिक : क्या बकते हो ?

गोसांई : जो मुंह में आया बक दिया !

कमल : सुनो, मैं हूँ चम्पदीद गवाह, आज से तीन साल पहले देवल भाई ने गंगा से कहा था, मैं तुझे पाकर रहूँगा। तब से गंगा को कपट जाल में फंसाने के लिए क्या-क्या नहीं किया !

देवल : चुप रह।

कमल : गंगा चुप है, मौन है इस मौन का आधार जो शब्द है, उसे अब कहे बिना नहीं रह सकता। पांच बरस का था मैं, जब मेरी माँ का स्वर्गवास हुआ। तब यह गंगा दस साल की थी। गांव की पाठशाला में यह पढ़ती थी। तभी से मैं इसके साथ बढ़ा हूँ। मेरे प्राणों में जो आज प्रेम, आशीष है, उसका मूल यही गंगा है। यह वह संगीत है जो न जाने किस हिमालय से गिरकर गंगामाटी गांव में आया। चुप रहते-रहते ऊब चुकी है यह माटी। इसको एकबार अपनी भाषा में अपनी बात कह लेने दो।

मालिक : यह बोलती क्यों नहीं ? हम सुनने को तैयार हैं।

कमल : सबने मिलकर इसे बनाया है गूंगा। सबने दिये निर्णय, इसने चुपचाप स्वीकार कर लिया। पर मुझे कह लेने दो, क्या हमारे पास कोई भाषा-बोली नहीं जिससे हम गंगामाटी से बातें कर सकें ?

षिवानंद : बोलो गंगा।

{ वह चुपचाप रो पड़ती है। }

षिवानंद : घबराओ नहीं, तुम्हारी शुद्धि हो जायेगी। मंत्र पढ़कर तुम्हें पंचगव्य पिलाकर शुद्ध कर लिया जाएगा। शास्त्र में उपाय है।

सब : बिल्कुल। सत्य उपाय। अरे तेरी किस्मत चमक गयी। वाह वाह !

### दूसरा दृश्य

{ कुसुम फूलों की माला गूँथ रही है। गंगा अब बहू रूप में षिवानन्द के दरवाजे से बाहर निकल कर पुकारती है। }

गंगा : कमल ! ओ कमल ! कहां गया ?

कुसुम : मनोहर आया था। उसी के साथ फिर गये हैं अपने खेत में हल जोतने।

गंगा : यह सब क्या हो रहा है ?

{ सोचती हुई खड़ी रह गयी है। }

पुरुष : हां, यह सब क्या हो रहा है ? क्या गंगा भी नहीं समझ पा रही है जो इसी गांव, इसी माटी की है , यह अब पुरोहित षिवानंद के घर की बहू है। इसके साथ इसकी छोटी बहन कुसुम भी यहाँ आयी है। मंदिर का सारा कामकाज यही करती है। घर-गृहस्थी में भी दीदी का हाथ बंटाती है। पर यह क्या हुआ, देवल गंगा को अपनी पत्नी के रूप में पाकर भी संतुष्ट क्यों नहीं हुआ ? ब्याह के अभी ज्यादा दिन भी नहीं हुए, देवल गंगातट की श्मशान भूमि पर उस तंत्र-सांधना में क्यों चला गया ? दोनों तांत्रिकों के साथ वह क्या कर रहा है ?

{ दूर दृश्य में दोनों तांत्रिकों के साथ देवल उसी भेष में मंत्र जाप करता हुआ दिखता है। }

ओम ह्रीं श्रीं क्लीं ए सौं हृदयाय नमः

ओम देवतायै नमः हृदि।

{ दृष्य ओझल हो जाता है। प्रसादी आकर गाने लगता है। }

चरखा चले सुरति विरहिन का  
काया नगरी बनी अति सुन्दर  
महल बना चेतन का.....  
सुरत भांवरी होत गगन मा  
पीड़ा ज्ञान रतन का  
चरखा चले सुरत विरहिन का।

{ गंगा बहू आंचल में भिक्षा लिए आती है। देवीप्रसादी के झोले में डालकर उस संगीत को सुनने में मानो खो जाती है। कमल के साथ मनोहर और चंदरा आते हैं। वे तीनों भी चुपचाप बैठकर सुनने लगते हैं। कुसुम धीरे से उठती है और एक फूल से कमल के कान में गुदगुदा कर छिप जाती है। अन्त में एक बार पकड़ी जाती है। फिर उसे घेर कर तीनों गा पड़ते हैं—चरखा चले सुरत विरहिन का.....। यह दृष्य देख गंगा हँस पड़ती है। }

कमल : भाभी, देवीप्रसादी के संगीत में और हमारे इस गीत में इतना ज्यादा फरक है क्या ?

गंगा : क्यों ?

कमल : उस संगीत में खो गई थी, हमारे गीत से हँस पड़ी ?

गंगा : एक सुर, दूसरा बेसुर।

कुसुम : नहीं, एक सुर, दूसरा असुर।

कमल : ओह ! अभी तक तो जानता था, असुर माने राक्षस आज पता चला, जो सुर में नहीं वही असुर।.....क्यों रे, हम असुर हैं ?

कुसुम : अपने आप से पूछो।

{ हंसती है। }

गंगा : कमल, तुम कहां थे ?

कमल : अपने खेत में हल चला रहा था।

गंगा : फिर वही ?

कमल : पूछता हूँ भाभी, हल जोतना क्या इन्हीं लोगों का काम है ?

गंगा : हल की मुठिया तुम पकड़ो, पुजारी के पूत, पिताजी के लिए जब यह अधर्म है, तो ऐसा क्यों करते हैं ?

कमल : फिर यह कहावत क्यों है—उत्तम खेती मध्यम बान निकृष्ट चाकरी, भीख निदान ?

गंगा : ऐसा तर्क करोगे ? क्या अपने पिता को बदल सकते हो, तुम तुम हो ; वह वह हैं।

कमल : वह अपने आपको मुझ पर क्यों लादते हैं ?

गंगा : अच्छा, तो चूँकि वह ऐसा करते हैं, तभी तुम ऐसा करते हो। क्रिया पिताजी हैं, तुम उसकी प्रतिक्रिया हो।

कमल : नहीं, उनकी प्रतिक्रिया देवल भाई हैं। मंदिर पूजा से श्मशान—साधना।

{ एक क्षण के लिए वही तांत्रिक—साधना, दृष्य कौंधकर अदृष्य हो जाता है। }

गंगा : जो करते हो, उसके कर्ता तुम हो ?.....नहीं हो। हल इसलिए चलाते हो कि पिता से विरोध है तुम्हारा। पिता को जान-बूझकर कष्ट देना चाहते हो !

कमल : हां यह सही है। पर मैं यहां बैठा-बैठा करूं क्या ? पिताजी कहते हैं—धर्मशास्त्र पढ़ो, कर्मकांड सीखो.....यही तो देवल भाई को पढ़ाया और सिखाया जा रहा था। तभी तो उनका अंतःकरण मर गया। अब वही श्मशान साधना में लगे हैं। शक्ति चाहिए, और शक्ति। शक्ति उपासना के लिए उन्हें बलि चाहिए।

गंगा : अच्छा, अच्छा बहुत हो गया गुस्सा। कुछ नाप्ता-पानी नहीं किया है न ?

कुसुम : दीदी, मैं ले आती हूं।

गंगा : नहीं, देवी पूजा के लिए माला गूंथ।

{ गंगा अंदर जाती है। }

कुसुम : मनोहर भाई, क्या अब बंबई नहीं जाओगे, परदेश कमाने ?

मनोहर : ना बाबा, अब नहीं जाता परदेश। सरकार न मालिक सिंह की ज्यादा जमीन से खेत निकाल कर डेढ़ बीघा खेत मुझे भी दिया है, परदेश गया तो मालिक फिर हथिया लेंगे।

कुसुम : चंदरा ! अपनी बीवी सीता को एक दिन में कितनी बार मारता है रे ?

चंदरा : क्या हिसाब जोड़ेगी ?

कुसुम : नहीं, फिर भी.....।

चंदरा : दो चार बार तो हो ही जाता है।

{ हंसता है }

कमल : क्या ?

चंदरा : अरे जब वह ऊटपटांक मुंह खोलेगी तो क्या मेरा हाथ नहीं उठेगा ?

कमल : मनोहर क्या अपनी बीवी को मारता है ?

चंदरा : अरे ये भी कोई मरद है ?

कमल : उल्लू ! बेवकूफ ! ! औरत को मारना तेरी मरदानगी है ? बचपन में ब्राह्मण ठाकुरों के हाथ पिटे थे अब उसका बदला गरीब बीवी से चुका रहे हो ? सुन लो कान खोलकर, अगर फिर से उसे मारा तो मेरे साथ नहीं रहोगे।

चंदरा : लो जा रहा हूं।

{ नाप्ता पानी लिये गंगा आती है। }

गंगा : अरे ! कहां जा रहा है ? बैठ नाप्ता कर।

चंदरा : मैं तुम्हारे हाथ का कुछ नहीं खाऊंगा, हां। तुमने हमारे हाथ का छुआ खाया है। पुजारी जी ने हमें सब बता दिया है। हां, तुमने अपनी सुद्धी नहीं करायी। पंडितजी भी तुम्हारे हाथ का छुआ पानी नहीं पीते, हां मुझे सब पता है। देवी मंदिर में तुम भी परवेश नहीं कर सकती, हां। हम तो भइया, जो धरम कहेगा, वही करेंगे।

कमल : क्या है तेरा धरम ?

चंदरा : जो पुजारी बाबा कहते हैं।

कमल : वह धरम उन्हीं का है। तेरा क्या है ?

चंदरा : तो अपना क्या है। जो उनका है, वही समझो अपना है। जो सनातन से चला आया है वही तो अपना है।

{ बड़बड़ाता हुआ चला जाता है। गंगा दो पात्रों में नाप्ता परोसती है कमल एक ही पात्र में कर लेता है और मनोहर के साथ खाना शुरू करता है। }

गंगा : चंदरा सही कहता है।

कमल : वह गधा है।

गंगा : पर जो कुछ है, वह सच है।

{ गंगा अन्दर जाती है। माला गूंथती हुई कुसुम गा पड़ती है। }

मन सुगना रे नयन रस पिपना।

चंदन गांछ तुलसी बिरवा

मोरे अंगना रे फूले रस फुलना।

छोटी मोटी तुलसी हरिहर पतिया

मोरे हिरना रे आवो मोरे अंगना।

फूल भरी थाली आंसू भरे नयना

मन सुगना रे नयन रस पियना।

कमल : रूक क्यों गई ?

कुसुम : फूलों का हार गया बन, गाना हो गया ठनठन !

कमल : पर तू ऐसे गाने क्यों गाती है ?

कुसुम : तुम ऐसे गुस्सा क्यों करने लगते हो ?

कमल : गुस्सा आने का कारण होता है।

कुसुम : गाने का भी कारण होता है।

कमल : क्या ?

कुसुम : ऐं`.....

{ गंगा पानी लेकर आती है। }

गंगा : एक ही बर्तन में दोनों ! पिता जी देखेंगे तो क्या कहेंगे।

कमल : शहरों में कोई छुआछूत नहीं मानता। वहां कोई शूद्र अपूद्र नहीं।

गंगा : वहां किसी से किसी का कोई संबंध भी नहीं।

कमल : संबंध यहां भी नहीं।

गंगा : संबंध है तुम्हें पता नहीं।

कमल : हां यही संबंध है। एक ऊंचा एक नीचा ; एक छूत एक अछूत।

गंगा : यह अंतर मिटा देने से संबंध जुड़ जाता है ? बाहर का अंतर मिटाने से भीतर का अंतर असंख्य गुना बढ़ जाता है। देखना ही है तो उसे देखो, जो बढ़ाता है इस अंतर को।

कुसुम : बाप रे पुजारी जी आ गये।

{ षिवानंद आते हैं। }

षिवानंद : (देखकर) यह मेरे बर्दाष्ट के बाहर है। बहू, यह क्या है ?

कमल : यह मैंने किया। भाभी अलग-अलग बर्तनों में ले आयी थीं।

षिवानंद : तेरी यह हिम्मत ! अब से तू घर के भीतर चौके में बैठकर खाना नहीं खायेगा। इसके बर्तन अलग।

कमल : यह घर किसका है ?

षिवानंद : मेरा।

कमल : हमारा क्या है ?

गंगा : कमल, अन्दर जाओ। जाओ।

{ कमल अंदर जाने लगता है। }

षिवानंद : (मनोहर से) फिर यहां दिखा तो टांगे तुड़वा दूंगा।

गंगा : लो पानी पीकर जाओ।

षिवानंद : मेरे बर्तन में इसे ?

गंगा : केवल यही दो पात्र लेकर आपके घर आयी थी। इसमें मैं पीता थी, इसमें कुसुम। आज से ये पात्र अलग रख दिये जायेंगे।

{ मनोहर पानी पीता है। }

षिवानंद : खबरदार ! फिर यहां पैर नहीं रखना !

गंगा : मैं समझती हूँ, यह कहने का अधिकार किसी को नहीं।

षिवानंद : तुम भी इसमें शामिल हो ?

गंगा : जो कुछ भी मेरे आसपास हो रहा है, मैं सबमें भागीदार हूँ।

{ षिवानंद गुस्से से चले जाते हैं। }

कुसुम : जिसमें जितना गुस्सा, समझो वह उतना ही डरा है।

मनोहर : हमें काहे का डर ! बचपन से इसी तरह देखा है इन्हें। देखने से डर मिट गया है।

{ उसी क्षण मंदिर से पूजा आरती का संगीत उभरता है। कुसुम पुष्पहार लिए मंदिर की ओर दौड़ती है। मनोहर मंदिर की दीवार के एक सूराख से देवी दर्शन करने लगता है। गंगा खड़ी देखती रह जाती है। }

पुरुष : मुझे इस गांव के इतिहास का पता चला। तब यह गांव नहीं था। केवल यहाँ माटी ही माटी थी। यह बहुत पहिले की बात है। एक राजा ने गंगा पार के राजा को लड़ाई में हरा दिया। वह लड़ाई केवल यह देखाने के लिए लड़ी गयी थी कि दोनों में बड़ा राजा कौन है। जो जीता वही बड़ा हुआ। बड़े ने छोटे को लूटा। लूटने वाले को धन की इतनी जरूरत नहीं थी, सिर्फ यह साबित करने के लिए लूटा कि वह बड़ा है। उसी लूट और विजय को स्मृति में उस राज ने गंगातट पर यह देवी मंदिर बनवाया। मंदिर के पुजारी को पांच गांव की जमींदारी दी गयी। जहाँ हो पुजारी की जमींदारी, जहाँ हो ऐसा मन्दिर, वहाँ गांव बनेगा ही। इस तरह बसा यह गांव, गंगामाटी। मंदिर के चारों ओर ब्राह्मण टोला। उसके बाद ठाकुर टोला, उसके बाद कुरमी, अहीर, बनियाँ, लाला, तेली—तमोली, कहार, नाऊ। फिर एक गड्ढा और उसके पार दक्खिन दिशा में शूद्र, हरिजन, अछूत टोला। दक्खिनी, हवा बहुत कम बहती है, इसीलिए अछूत बस्ती गांव से दक्खिन ; ताकि उधर से बहकर आती हुई अछूत हवा गांव को अपवित्र न कर दे। राजा बड़ा धर्मात्मा था, क्योंकि मंदिर बनवाय था।.....वह बड़ा वीर था, मंदिर के चारों ओर इतनी ऊंची दीवार बनवाई थी।.....पर किसी दिन एक शूद्र बालक ने देखा, इस दीवार में एक सूराख है जिससे उस पार मन्दिर के भीतर देखा जा सकता है—मंदिर के भीतर मां को। जड़ प्रकृति के नियमों की दीवार बहुत मजबूत और ऊंची होती है। अचानक मानव प्रकृति में एक नन्हा सा सूराख दिखाई पड़ता है, वहीं पर आंख लगाकर इसने एक अद्भुत चीज देखी। इस छिद्रपथ से हम उसके साथ जुड़े हुए हैं, जो इस दीवार के उस पार है। वहीं से समस्त सौन्दर्य, स्वाधीनता, प्रेम प्रवाहित होता है।

{ इस बीच मनोहर चला गया है। कमल भीतर से आ खड़ा देखता रह गया है }

गंगा : तुम्हारे भइया अब तक नहीं लौटे।

कमल : श्मशान घाट पर शक्ति उपासना में लगे हैं।

{ वही दृष्य फिर कौंधता है। देवल का तांत्रिकों के साथ वही मंत्र जाप }

कमल : भइया को समझाती क्यों नहीं ?

गंगा : जिसको जो प्रिय है, उसके अलावा वह और कुछ नहीं समझ सकता।

कमल : क्यों ?

गंगा : अपने उस प्रिय के अलावा वह और कुछ देख नहीं सकता। देवल को पहली ही बार में देखकर जान गयी थी, यह किसी विषेय की खोज में है।

कमल : तुम्हीं तो थीं वह विषेय, तुम्हें पा गये। अब किसकी खोज में हैं ?

गंगा : वह मुझे पाना नहीं, पराजित करना चाह रहे थे। उनकी इच्छा कुछ और है। वह कमजोर हैं, पर उसे अस्वीकार कर शक्तिशाली बनना चाहते हैं। वह बचपन से ही अपने पिता और इस गांव के वातावरण से अपमानित और छोटे किये गये हैं, इसीलिए अब यह वह बनना चाहते हैं, जो यह नहीं है।

कमल : हां, चाहते हैं, कोई ऐसी सिद्धि प्राप्त कर लें, लोग उनके पैर छुएं। डरें, जैसे लोग पिताजी से डरते हैं।

गंगा : तभी उनका चित्त किसी सच्चाई में नहीं लगता। पढ़ते थे, पढ़ाई से भागे। नौकरी मिली, कर नहीं सके। मुझसे ऊलजलूल बातें करते थे। हर क्षण जैसे भटकते फिरते थे। अचानक चिल्ला पड़ना, 'मैं दिखाऊंगा, लोग देखते रह जाएंगे।'..... मन केवल मन, वही भटका रहा है।



{ सन्नाटा }

से खींच कर असत्य में ले जाना। कहीं टिकने न देना।

कमल : भइया आ रहे हैं।

{ देवल का आना—काले वस्त्रों में माथे पर लाल रंग पोते मंत्र जाप करते हुए }

ओंम ह्रीं श्रीं क्लीं ए सों हृदयाय नमः।

ओंम त्रिपुर सुन्दरी देवतायै नमः हृदि।

कमल : भइया !

देवल : विध्न मत डालो, नहीं तो भस्म हो जाओगे।

कमल : चलिए, भस्म कीजिए मुझे।

गंगा : कमल।

देवल : पूरी होने दो मेरी साधना। मैं एक—एक को दिखा दूंगा, क्या है मेरी शक्ति।

कमल : चलो डाक्टर को दिखाएं, बीमार हो तुम।

देवल : बीमार तुम सब हो, मैं स्वस्थ हूं। अपने स्व में स्थिति। मैं साधनारत हूं उस त्रिपुर सुन्दरी के लिए।

कमल : त्रिपुर सुन्दरी सामने खड़ी है।

देवल : यह हाड—मांस की काया, केवल माया।

गंगा : पर मैं हूं, प्रत्यक्ष हूं।

देवल : जो प्रत्यक्ष है, वही है माया। मेरे समीप मत आना। छुआ तो आग लग जायेगी।

गंगा : चारों ओर आग लगी हुई है। सब अपने भीतर जल रहे हैं। हमारी साधना न जाने कब से उल्टी दिशा में चल रही है। जो है, उसे अस्वीकार करना, नहीं देखना, जो नहीं है, उसे पाने की कोषिष करना।.....जिस दिन हम उस एक से अलग हुए उसी दिन से हमारी साधना शुरू हुई, उसी से पुनर्मिलनकी। पर उसी क्षण से हमारी साधना उल्टी दिशा में मुड़ी—हमने एक दूसरे से अपने आप को अलग समझा। अलगाव का वह महाचक्र चला—जाति, कुल, धर्म के प्रकार, उतने दल। हम सब खण्ड—खण्ड अपनी भेद की ज्वाला में जल रहे हैं। हम सब भयभीत, क्योंकि एक दूसरे से टूटकर अलग हैं। धू धू कर जल रहे हैं अपने भीतर।

देवल : मूर्ख, भीतर केवल शून्य है।

गंगा : शून्य है तो भीतर आग किसमें लगी है ?.....भीतर मन है और उसी में आग लगी हुई है।

देवल : क्या तू नहीं जल रही है ?

गंगा : मैं देख रही हूं कि मैं जल रही हूं। तुम जल रहे हो, पर देख नहीं रहे। उसी से भागकर श्मशान में शरण लेना चाहते हो। भागने वाले के हाथ शक्ति नहीं आती।

देवल : तू मूर्ख है। माया है।

{ अंदर जाता है }

गंगा : मेरा पति एक घायल षिषु है। पिता ने मारा है इसे प्यार देकर। अब यह खुद अपने आप को मार रहा है क्योंकि अपने शत्रु को नहीं मार सकता। यह आत्महिंसा मैं नहीं होने दूंगी।

{ गंगा रो पड़ती है। }

कमल : भाभी !

गंगा : जब तुम्हारा यह संबोधन सुनती हूँ तो कुछ धुल-पुंछ कर निर्मल हो जाता है। पर मन की आग बुझकर भी नहीं बुझती। राख हटाते ही धक-धक जल उठती है। स्त्री हूँ न, सब बातें खोलकर भी नहीं कह सकती।

कमल : भाभी, तुमने एक बार एक कहानी कही थी—कमलों का एक वन था। हाँ, कमल वन, जिसमें मदमस्त हाथियों का एक झुंड, कमलों को रौंदते हुए। किसी ने उन हाथियों को तो नहीं देखा, पर उन रौंदे हुए कमलों पर उनके पैरों के निषान थे। मेरा नाम कमल है न ? यह नाम मुझे किसका दिया हुआ है ? तुम्हारा। मैं अब महसूस करता हूँ, मेरे भीतर है वह कमलवन, एक यहां, एक यहां, एक यहां।

गंगा : हाँ।

कमल : और हाथियों का वह झुण्ड, मेरे कमल वन को रौंदकर चला गया है। मैं देख रहा हूँ—देवी मंदिर में नाना उम्र और तरह-तरह के चेहरों को। सबके चेहरों पर भय है। सबके ओंठ हिल रहे हैं।

गंगा : जाओ देवी को प्रणाम कर आओ।

कमल : क्या कह कर प्रणाम करूँ ?

गंगा : मां !

कमल : मां प्रणाम !

{ गंगा के चरण स्पर्ष करता है। }

कमल : जो प्रत्यक्ष है उसे ही प्रणाम करूंगा।

{ गंगा अन्दर जाने लगती है। }

कमल : भाभी, एक बात पूछूँ, मन्दिर में क्यों नहीं जाती ?

गंगा : अषुद्ध हूँ, अछूत हूँ, मैंने अपनी शुद्धि नहीं करायी।

कमल : चलो मेरे साथ, देखता हूँ कौन रोकता है ?

गंगा : यह बात नहीं। जब मां बुलाएगी तो मैं दौड़ी जाऊंगी।

कमल : पत्थर की मूरत बुलायेगी ?

गंगा : चुप रहो !.....सोचते हो, रक्त—मांस के शरीर के अलावा और कहीं चैतन्य के रहने के लिए जगत नहीं ?

{ अंदर जाती है। मंदिर से कुसुम प्रसाद लेकर आती है। }

कुसुम : अरे मां का प्रसाद नहीं लोगे ?

{ माथे पर टीका लगाकर प्रसाद देती है। }

कमल : तुम्हें देवी की मूरत में विष्वास है ?

कुसुम : अरे मैं कोई भक्तितन हूं जो विष्वास की बात पूछते हो। अरे मेरा जो काम है, वह करती हूं।

{ हंस पड़ती है। भीतर से देवल आकर पत्थर पर कृपाण की धार तेज करता है। }

कुसुम : जीजा जी, नमस्कारम्।

देवल : भगवती को मेरा नमस्कारम् !

कुसुम : क्या कर रहे हैं ?

देवल : साधना की पूर्णाहूति। जो पवित्र है, कोमल है, उसी से पूर्ण होगी सिद्धि। शक्ति का मूलाधार कुंडलिनी है। चिदाग्नि के प्रज्वलित होते ही शक्ति प्राप्त होगी। तभी आकाश गमन होगा।

कुसुम : आपकी बातें बिल्कुल समझ में नहीं आतीं।

{ गंगा भीतर से गीले कमड़े सूखने के लिये फँलाती है। }

देवल : ॐ श्रीं ह्रीं कमल कमलालये।

प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं ॐ महालक्ष्मैनमः ॥

कमल : अभी तक त्रिपुर सुंदरी के लिए साधना कर रहे थे, अब यह महालक्ष्मैनमः कहाँ से ?

देवल : अरे इस शरीर में ही समस्त तीर्थ, समस्त मंत्र, समस्त प्राणिपात, समस्त बीजाक्षर, मूलाक्षर, और विहागाक्षर हैं। जो त्रिपुर सुंदरी है वही महालक्ष्मी है।

कमल : यही बात तो कभी पिता जी के मुख से भी सुनी थी।

देवल : चुप रह। उसी अज्ञानी को क्या पता। वह तो भक्त है। भक्ति माया है। सो माया उसे मिल रही है, मेरी साधना शक्ति को है। साधना रक्त मांगती है। सिद्धि स्वरूपा को बलि चाहिए।

गंगा : मेरी बात मानो, इस अमावस्या की आधी रात को मेरी बलि दे दो। तुम्हें मिल जाएगी सिद्धि, मुझे मुक्ति.....

कमल : क्या कहती हो भाभी ?

गंगा : सच कह रही हूँ, और कोई उपाय नहीं। देखो इनकी सूरत। आंखें देखो। कितनी दुर्गंधि ! तुम जिस कमलवन के रौंदने की बात करे रहे थे न, उस कमलवन में यहां आग लगी हुई है।

देवल : मैं अपनी कुंडलिनी से अपने कमलों को भेदकर अमृत पीता हूँ रे।

गंगा : कहां है वह अमृत ? कहां है ?

देवल : देखोगी ! देखोगी ! चलो मेरे साथ श्मषान।

गंगा : छोड़ दो मुझे। मेरा अमृत मेरे जीवन में है। श्मषान में केवल मृत्यु है।.....जो साधनारत है वह स्वस्थ दिखता है। वह ऐसे कटु वचन नहीं बोलता। वह पवित्र होता है।

देवल : मैं पवित्र हूँ।

गंगा : तो अपनी बलि देकर तुम्हें अब तक सिद्धि क्यों नहीं मिली ?

देवल : बलि दूसरों की दी जाती है।

गंगा : क्यों ! दूसरों की बलि क्यों ? अपनी बलि क्यों नहीं ? दूसरों को मार कर शक्तिशाली होना चाहते हो ? यह देवी मंदिर उसी की है निषानी—एक राजा ने दूसरे को मारा। (षिवानन्द आकर खड़े हो जाते हैं।) तुम दोनों भाई वही बनना चाहते हो, जो तुम्हारे पिता हैं। एक पहुंचा श्मशान, दूसरा हर काम उनके विरोध में करता है। अगर पिता पसंद नहीं, तो उनकी कमाई क्यों खाते हो ? उनके घर में क्यों रहते हो ? चले जाओ जहां पसंद हो। (रुककर) जो है उसे स्वीकार नहीं करेंगे, जो पसंद नहीं उसे छोड़ेंगे नहीं।

देवल : क्या बड़बड़—बड़बड़ कर रही है।

{ गंगा अंदर चली जाती है। }

कमल : भाभी ने देवल के साथ मुझे भी जोड़ दिया। अब तक समझता था मैं भिन्न हूं। पर यह सही है हम दोनों अपने अपने ढंग से.....

षिवानन्द : है हिम्मत मुझे अस्वीकार करने की ?

देवल : मैं करता हूं अस्वीकार।

षिवानन्द : फिर यहाँ क्यों ?

देवल : मेरा निवास श्मशान में है।

षिवानन्द : यह श्मशान है ?

देवल : इसका उत्तर तुम्हें उस दिन मिलेगा जब मुझे सिद्धि प्राप्त होगी।

{ तेजी से जाता है। }

षिवानन्द : तू क्या सोच रहा है ?

कमल : स्वीकार—अस्वीकार में मुझे एक फैसला करना है।

षिवानन्द : पहले अपने आपको स्वीकार करो।

कमल : अपना वह क्या है, यही चाह रहा था देखना। पर बार—बार तुम आ जाते हो बीच में। क्यों यह समझ में नहीं आता ? कुछ साफ नहीं दिखाता। जो धर्म, जीवन को धारण करने के लिए बना था, वही शत्रु हो गया ?

{ गंगा निकलती है। }

गंगा : कमल !

कमल : आज मुझे फैसला करना ही है। मैं बीच में लटका नहीं रह सकता।

गंगा : गुस्से से फैसला करोगे या ध्यान से सच्चाई को देखकर ?

कमल : देख नहीं पाता यही तो सारा रोग है।

कमल : क्यों नहीं है ! जन्म तो तुम्ही ने दिया।

षिवानन्द : नास्तिक.....अविष्वासी।

{ अंदर जाते हैं। }

गंगा : देखने वाला कौन है ?

कमल : मैं।

गंगा : तुम्हारा मैं क्या है ? तुम्हारी इच्छाएं। ये इच्छाएं तुम्ही में क्यों आयीं ? इस पेड़ में क्यों नहीं गयीं वे इच्छाएं। इस पत्थर में, इस कपड़े में क्यों नहीं ? देखो.....कहीं कुछ झूठ नहीं। सब के पीछे कार्य कारण का नियम चल रहा है। देखो.....सुनो.....देखो.....इसी क्षण में रह कर देखो, अतीत को मत लाओ बीच में। पिता वही अतीत है जिन्हें तुम भुला नहीं पाते। तभी तो इतना विरोध है !

{ कमल गंगा को अपलक देख रहा है। }

पुरुष : देखना इतना मुश्किल है क्या ? यह कितने आश्चर्य की बात है ? मैं जब यह देख रहा हूं तो सचमुच सोच रहा हूं अपना जीवन। मेरी स्मृतियां मेरे और इस दृष्य के बीच में कौंध रही हैं। मैं अपने गांव से शहर जा रहा हूं। पर जैसे अपने गांव को देख रहा हूं—पहली बार देख रहा हूं। अपने गांव में था, पर देख यहां रहा हूं।

गंगा : यह सोच रहे हो ?

पुरुष : नहीं—नहीं देख रहा हूं।

गंगा : सोचना और देखना दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

पुरुष : हां, यह आज जान रहा हूं।

### तीसरा दृष्य

पुरुष : रात का पहला पहर है। इतने जल्दी सारा गांव सो गया है। सिर्फ तीन जगह लोग जग रहे हैं। श्मशान घाट पर वही देवल.....(वही दृष्य आकर अदृष्य हो जाता है।) हरिजन टोले में चन्द्रा और सीता.....(चंद्रा ने सीता को घसीट कर जमीन पर गिरा दिया है वह रो रही है चंद्रा उसे धमकाता हुआ दीख रहा है।) सीता के बाप ने चंद्रा से कभी तीन सौ रुपये कर्ज लिए थे। सीता उसी कर्ज और ब्याज के बदले, बंधक रूप में है। सीता अब जवान नहीं। चंद्रा चाहता है, सीता रात में भी कुटाई-पिसाई का काम करें। पर इससे भी आगे बात यह है, चंद्रा अब एक दूसरी औरत लाना चाहता है.....। सोचता था रोग केवल ऊपर ही है—यहां इतने नीचे भी है।

{ दृष्य आता है। }

चंद्रा : हां, हां अपने बाप से जाकर बोल, चुकता कर जाये कर्ज, वरना जैसे कहूँ करना होगा।

सीता : रात को मुझसे काम नहीं होता।

चंद्रा : तो क्या नमक लगाकर तुझे चाटूँ ? अलग छप्पर में रह, या भाड़ में जा, पर काम पूरा कर। ओझा के यहाँ गोबर काढ़ना, गोसाईं के यहाँ मजदूरी, मालिक के यहाँ बैलों को सानी-पाती, फिर आधी रात तक शंभूषाह की ढेंकी चक्की.....।

सीता : इतना मुझसे नहीं होगा।

चंद्रा : तो क्या गांव छोड़कर भाग जायेगी। है हिम्मत तेरा बाप कर्ज डकार जाये ? पुरोहित पुजारी से जाकर कहूँ ?

{ दृष्य विलीन हो जाता है। }

पुरुष : समझता था, ऊंची जाति और बड़े लोग ही नीची जाति, गरीब से इस तरह का अन्यायपूर्ण काम लेते हैं। पर यहाँ तो गरीब भी अपने से ज्यादा गरीब और मजबूर के साथ वही कर रहा है। सरकार और शासन का इन्हें कोई डर नहीं ? सरकार ने तो सख्त कानून बना दिए हैं। पर असली शासन यहाँ अब भी उसी अंधविश्वास का है—पुरोहित पुजारी का नाम लेकर चंद्रा ने सीता को क्यों धमकाया ? वह क्यों चुप रह गयी ? सीता का बाप सत्य वचन को धर्म मानता है।....पर सत्य वचन क्या है ?

{ दृष्य ओझल होता है। दूसरा दृष्य आता है। भीतर से गमछे से हाथ पोंछता हुआ कमल निकलता है। पीछे कुसुम दौड़ी आती है। }

कुसुम : पेट भर खाया क्यों नहीं ? जो-जो तुम्हें पसन्द था वही सब तो बनाया था दीदी ने। थोड़ा सा हाथ मैंने भी दिखा दिया तो क्या हो गया। अरहर की दाल में अंजुरी भर गुड़, रामदाना की खीर में मुट्ठी भर लाल मिरच...।

कमल : नहीं, ऐसा कुछ नहीं।

कुसुम : यह कैसे हो सकता है। यह देखो, ले आयी हूँ खीर देखो कैसे खाती हूँ लाल मिरच की खीर।

{ खाती है। }

कुसुम : अरे थू यह क्या, जरा भी तीत नहीं, तो दीदी ने सब देख लिया और फिर से बना दिया ? मैं गयी ही क्यों देवी की आरती में ? पंडितजी ने कहा-देवी को सुला कर जाना। उन्हें सुलाने लगी तो खुद सो गयी।

{ दिखाती है। }

कुसुम : ऐ ! तुम्हें हंसी भी नहीं आयी।.....बताओ भरपेट खाया क्यों नहीं ?

कमल : भाभी इस तरह चुप क्यों है ? कल से नहीं बोलीं।

कुसुम : ओह तो यह बात है। वह नहीं बोली, तुम उनसे बोले ?

कमल : वह नहीं बोलतीं तो मैं कैसे बोलूँ। आज भोर में जाता, सोचता हूँ अभी चला जाऊँ। इतने दिनों बाद घर छोड़कर पढ़ने जा रहा हूँ। तो पराया हो गया ? इंटर पास कर घर बैठा था। आगे पढ़ने की कोई इच्छा नहीं थी, फिर से पढ़ने की इच्छा जगी है। अब इस विषाक्त वातावरण में नहीं रहूँगा, जाकर पढ़ूँगा, अपने पैरों पर खड़ा होऊँगा, यह प्रेरण किसने दी ? भाभी नहीं तो और कौन ?

कुसुम : हाय कितने बच्चे हो !

कमल : मैं बच्चा हूँ ?

कुसुम : चीखने से बड़े नहीं हो जाओगे। रूठता तो बच्चा है।

कमल : तो भाभी भी बच्चा हैं ?

कुसुम : बिल्कुल। तुम यहां से चले जाओगे, छिपकर रो रही थी। मोह न उमड़ जाये, इसीलिए तो चुप हैं।

{ चिराग लिए गंगा निकलती है। रास्ते पर रख देती है। मनोहर आता है। }

मनोहर : सुना है, आज भोर में ही चले जाओगे कमल बाबू !

कुसुम : कहते हैं, अभी चला जाऊँ।

मनोहर : अरे चिट्ठी-पत्री देना कमल भइया !

कमल : (सहसा) मुझसे कुछ बोलो भाभी, विष्वास रखो, मुझ में मोह नहीं उमड़ेगा।

गंगा : (चुप है।)

कमल : भाभी !

गंगा : मुझसे अब क्या सुनना चाहता है ?

कमल : एक बार तुमने कल्पवृक्ष की कथा कही थी, तब मेरे मुंह से निकला था, ये सारी कथाएं मनगढंत हैं। पर जब से यह महसूस किया कि मेरे कमल वन को उन अदृश्य हाथियों ने रौंद डाला, जब से मुझे उस कल्पवृक्ष की याद आती है।

गंगा : हम सब के भीतर तो बुद्धि है, संकल्प है, वही है कल्पवृक्ष।

मनोहर : अरे विष्वास ही नहीं होता, भीतर कोई वृक्ष भी हो सकता है।

कमल : यही तो विष्वास नहीं होता।

गंगा : यह तो मस्तिष्क है न, जिसे दिमाग कहते हैं, इसी का नाम है स्वर्ग। क्योंकि यहीं से विचार पैदा होता है। यहीं है उस कल्पवृक्ष की जड़।

कुसुम : कल्पवृक्ष उल्टा है ?

गंगा : कल्प से संकल्प, कल्प से विकल्प। संकल्प स्वर्ग है, विकल्प नरक।

कमल : जब संकल्प कर लिया जाता है तो मन का राज्य खत्म हो जाता है ?

गंगा : नहीं, तब तुम्हें बहलाने के लिए कथा कही थी, जीवन की बात आज कहती हूँ, अब तुम यहां से जीवन में जा रहे हो, केवल सच्चाई ही तुम्हारा साथ देगी। संकल्प कर लेने से मन का संसार समाप्त नहीं होता, मन का राज्य शुरू होता है।

कमल : यह क्या कह रही हो ?

गंगा : अपने देवल भाई को देखो न, सिद्धि प्राप्त करने का संकल्प किया है। जब जो करने का मन, हृदय नहीं चाहता तभी तो संकल्प किया जाता है। एक ओर नहीं, दूसरी ओर हां, एक ओर कमलवन, दूसरी ओर रौंदते हुए हाथियों का दल। इस हां, नहीं में हम खुद अपने आप को रौंद कर मार डालते हैं। और जड़ हो जाते हैं। इच्छा नहीं है तभी तो संकल्प है।

कमल : गंगा भाभी !

गंगा : पर कौन मार सकता है इच्छा को ? जो उसे मारने चला, वह खुद मरा है। इच्छा ही मूल है। वही है कल्पवृक्ष। उसके नीचे खड़े होकर देखो उसे। देखो वह क्या है ? कहां से आयी ? उसे पूरा करो। उसके लिए कर्म, प्रयत्न करो। भोगो उसे। पर कर्म ही तो नहीं कर सकते, तभी तो भाग कर श्मशान जाते हैं।!.....तुम जा रहे हो, तुमसे इतनी कठोर हो रही हूँ। सारा जीवन यथार्थ कठोर है। जाओ, पर कभी अपने विरोध में मत जाना।

कमल : सब कुछ उलट-पुलट डालती हो। सारा कुछ तार-तार हो जाता है।

गंगा : सब कुछ यथार्थ है। तुम्हारे जीवन में जो कुछ घटा है, उसे भूले नहीं हो। सब कुछ मौजूद है भीतर। और वही है जो बड़ी-बड़ी बातें करता है। रुलाता है, भावुक बनाता है। वही है जो पुराण कथाओं से अपने आप को बहलाता है।

कमल : अब तक जितनी कथायें कही हैं सब मन बहलाने की थीं ?

गंगा : (चुप है।)

कमल : हे ईश्वर !

गंगा : कभी मत मारना अपने आप को। सबकी मार तो पड़ रही है। तुम भी मारोगे अपने आप को ?

कमल : मैं कौन हूँ ?

गंगा : वही देखने जा रहे हो।

कमल : मुझे आशीष दो।



गंगा : अपने आप से लो। कभी इस घर को मत याद करना। याद आये तो रोकना नहीं। देखना, क्यों याद आ रहा है यह घर। फिर देखोगे, यदि इसलिए आ रहा है कि यहीं से बंधे हुए हो। बताओ बंधा कौन रहता है ?

कमल : पशु। असहाय.....विवश।.....अब भोर होने को है। जाऊंगा।

गंगा : इसलिए चुप थी। सारा श्रेय तुम्हे है। तुम्हें ही।

{ कमल गंगा का चरण स्पर्श करता है। कमल जाने लगता है कुसुम को देखता है। कुसुम गंगा के पीछे छिपती है। कमल के पीछे मनोहर जाता है। कुछ ही क्षणों बाद लड़खड़ाता हुआ देवल आता है और उस चिराग के पास गिर जाता है। गंगा दौड़कर उठती है। }

देवल : मुझे छू कर मेरी साधना भंग कर देना चाहती है। दूर हट जा। देखती क्या है ? श्राप दे दूंगा, श्राप।

गंगा : पानी पिओगे ?

देवल : अमृत पीता हूँ अमृत ?

{ गंगा के साथ कुसुम अंदर जाने लगती है। }

कमल : कुसुम ! रूक जा, कहां उस अषुद्ध के साथ जाती है ? तू सुभागी है। ऊर्ध्वलोक की यात्री है। उच्चाटन हो गया है। सिद्धि सामने खड़ी है।

{ हंसता है गंगा कुसुम का हाथ पकड़े अन्दर चली जाती है। देवल एक हड्डी से कुछ पीने का प्रयत्न करता है। }

पुरुष : यह क्या पी रहा है। कौन पिला रहा है ? मेरे गांव में सोलह वर्ष की उमर में मेरी शादी हुई थी। सुबह बारात जाने से पहले मां ने मुझे कुंए की परिक्रमा कराई थी। दाएं हाथ में लोहा बांधा, बाएं हाथ में घोड़े की टूटी हुई एक नाल। गलें में एक पीला कपड़ा जिसमें न जाने क्या बंधा हुआ लटक रहा था। मैं दूल्हा भेष में पालकी में बैठने जा रहा था। मां ने कहा, लो मेरा आंचल हटाकर दूध पी लो। क्यों ? यह क्या है ? क्यों ? मां का मुंह देखने लगा। मेरे भीतर मेरा प्रज्वलित रहा, और मेरे तप्त ओठों पर मां के स्तन का दो बूंद दूध ! पर मेरे होंठ अब तक जल रहे हैं।.....हे, क्या पीना चाहता है ?

देवल : अमृत।

पुरुष : अमृत इस हड्डी में ?

देवल : मेरी साधना जब पूरी हो जायेगी, इसमें अमृत बरसेगा।

पुरुष : यह साधना नहीं, भागना है। पर मैं भागकर शहर नहीं गया ? क्या यही गांव मेरा पीछा नहीं कर रहा ? मेरे होंठ अब तक प्यासे क्यों हैं ? मां का वह दूध पीकर क्या मैं बच्चा ही बना रहा गया ? मां से प्रज्वलित क्यों नहीं किया ? आज जो देख रहा हूँ वह क्या मैं खुद नहीं ? किस सिद्धि और शक्ति की खोज में गांव से भागकर शहर आया ? वहां क्या मिला मुझे ? यही गांव मेरा पीछा नहीं कर रहा और यह गांव क्या है ? क्या है.....?

## दूसरा अंक

{ देवी प्रसाद गा रहा है।}  
 बता दे भाई मेरा घर कहां।  
 जहां से फिर कहीं जाना नहीं।  
 मेरा वह घर कहां  
 बता दे भाई मेरा वह घर कहां।  
 जहां पिंजरे में मनपंछी बंधा  
 वह मेरा घर नहीं है  
 बता दे भाई मेरा घर कहां है।

पुरुष : मेरा भी वह घर नहीं है। ना गांव का घर न शहर का घर, फिर मेरा घर कहां है ?

गंगा : याद है ?

प्रसादी : तभी तो भूख लगती है।

गंगा : यह सौभाग्य मेरा कि आज तुम मेरे हाथ का भोजन करोगे।

प्रसादी : किसका ?

गंगा : मेरा । ८

प्रसादी : मेरा नहीं ?

गंगा : यह तुम जानो।

प्रसादी : मां, तुम सब जानती हो। मुझे बहलाती हो।

पुरुष : वह दूध पिलाकर मां ने मुझे बहलाया था ? उसका मर्म नहीं बताया पर मैंने पूछा क्यों नहीं ? मना कर सकता था।

गंगा : चलो, बैठो, भोजन ले आती हूँ।

{ प्रसादी बैठता है। गंगा अंदर जाती है। }

पुरुष : बहुत दिन बाद पता चला—मां के दूध पिलाने का मतलब था—जा अब तेरा बचपन खत्म हुआ। अब तू बालिग हुआ, पुरुष अब अपने बचपन को भूल जा। मत याद करना अपने अतीत को ! अब तू होने जा रहा है एक स्त्री का पति। हॉ मैं अपनी उस पत्नी का पति हुआ। पर कहां हुआ ? शहर में जाकर एक दूसरी स्त्री से प्यार किया। गांव में प्यार करना पाप था, वह भी अपनी पत्नी से, जो परदे में रहती थी, वहाँ जो कुछ भी था, वह धर्म था—धर्म जिसका केवल एक प्रयोजन था डराना, नहीं नहीं ऐसा मत करो, वह पाप है। कोई देख लेगा तो ? कहां भूल पाया अपना वह डरा हुआ बचपन ? शहर में प्यार किया। दूसरी शादी की। वह भाग गयी, वह भी अपना बचपन नहीं भूल सकी थी। फिर तीसरी बार प्यार किया। तीसरी शादी की, पर मेरा गांव मेरा पीछा कर रहा है.....कौन है तू ? धर्म ? यह कैसा धर्म है जो डराये ?

{ कुसुम आती है। पुरुष को देखती है। प्रसादी को देखकर चिढ़ाती है। वह भी चिढ़ाता है। }

प्रसादी : देवी प्रसादी गाता है, सुनोगी दीदी !

कुसुम : अरे इसका दिमाग तो नहीं खराब। मुझे दीदी कहता है। हे तुम कौन हो ?

पुरुष : कुछ पता नहीं। अपने गाँव आया था। लौटकर इधर से शहर जा रहा था.....।

कुसुम : राम राम !

पुरुष : राम राम !

{ कुसुम बैठकर खेलने लगती है। }

आटे बाटे दी चटाके

वन फूले बंगाली फूले

सावन मास करेला फूले

बाबा लाये सात कटोरी

एक कटोरी फूटी

मामा की बहू रूठी।

{ प्रसादी उसके संग खेलने लगता है। }

अटकन बटकन दही चटाकन

लौबा लाटी बनके काटी

तुहुर तुहुर पानी आवै

कौआ मामा आम गिरावे....

पुरुष : बच्चों की तरह दोनों आनन्द से खेल रहे हैं। इन्हें जबरदस्ती दूध पिलाकर यह नहीं कहा गया कि जाओ अब तुम बड़े हो गये। ये शादीषुदा नहीं, तभी यह भ्रम नहीं पला कि ये अब बच्चे नहीं रहे आज पता चला मुझमें वही भ्रम है। तभी मेरे पुरुष का पीछा मेरा ही षिषु कर रहा है। वह दोनों में ही हूँ। मैं ही कर रहा हूँ अपना पीछा।

{ थाली में भोजन लिए गंगा आती है। }

गंगा : जा पंडित जी का भोजन बना।

{ कुसुम जाती है। }

गंगा : खाओ खाना शुरू करो !

{ प्रसादी चुप बैठा है। }

गंगा : क्या हुआ ? क्या बात है ?

{ रोता हुआ भागता है। गंगा रोकती है। }

प्रसादी : बातें जितनी बड़ी-बड़ी करता हूँ, जीवन उतना ही छोटा है। झूठा हूँ ! मैं झूठा हूँ !

गंगा : तुम गाते हो।

प्रसादी : मैं भीख माँगता हूँ। वह नहीं हूँ जो दिखता हूँ।

पुरुष : ओह ! यह भी दो है। एक हां, एक नहीं। एक जीवन एक धर्म। दोनों परस्पर विरोधी। धर्म भीख माँगता है। जीवन रो रहा है। धर्म भिखारी है। जीवन आंसू है।

गंगा : रोओ नहीं। देवी प्रसादी भीख नहीं माँगता। देवी का गीत गाकर सब को प्रसाद देता है। जो हम नहीं कर पा रहे तुम कर रहे हो। हम सब पर तुम्हारा ऋण है।

प्रसादी : ये पहले की बातें हैं। आज ऐसा नहीं है। जीवन बहुत आगे चला गया, धर्म बहुत पीछे रुक गया। जीवन बिल्कुल बदल गया। धर्म बिल्कुल नहीं बदला। वही आज व्याधि हो गया। मैं व्याधिग्रस्त हूँ। गाता हूँ—सबको अपने जैसा देखो, पर देखता हूँ पराये जैसा। मां, जो भूखा है, वह यह नहीं कह सकता.....।

पुरुष : दान करो। दान दो। भूखा लेने के लिए दौड़ेगा। धर्म कहेगा, यह मनुष्य का धर्म नहीं। प्रवृत्ति का दमन करो। पुण्य से पूर्णता आती है। पूर्णता ही धर्म है। पर यही आत्मविरोध है। यही आत्मविरोध है, इसी ने बांटा है। इसी ने किया है खंड-खंड। यही नहीं होने देता एक।

{ कुसुम आकर यह सब देखती रह गयी है। प्रसादी भागता है। कुसुम उसका एकतारा उठाकर देने जाती है। }

कुसुम : रूको प्रसादी। यह लो।.....वह देखो दीदी, उसके सामने रो रहा है।

{ पुरुष के सामने रो रहा है प्रसादी }

गंगा : वह कौन है।

कुसुम : कोई मुसाफिर है।

{ गंगा थाली लेकर उसके पास जाती है। }

कुसुम : कैसा है ? खेलने लगा, फिर रोने लगा। लो अब खाने लगा। सब हैं एक से एक बच्चे, फल लगे कच्चे, कहते हैं हमीं हैं सच्चे।

{ शंभूषाह और गोसाईं आते हैं। }

शंभू : अरे यह अकेले खड़ी-खड़ी बड़बड़ा रही है। अरे यह खड़ी-खड़ी सो रही है ? ओय !

{ कुसुम आंख बंद किए घूमने लगती है। }

गोसाईं : नींद में चल रही है। कोई भूत-प्रेत तो नहीं चढ़ गया। अरे नाच रही है।

कुसुम : हू हू हू हू ! फू फू फू !

{ दोनों डर जाते है। }

शंभू : भाग चलो जो है सो की।

कुसुम : नहीं।

गोसाईं : दुहाई देवी भवानी की।

शंभू : हमें छिमा करो जो है सो की।

{ गंगा आकर देखती रह जाती है। }

कुसुम : चलो जमीन पर माथा रगड़ों। मैं जब तक ना कहूं सिर मत उठाना। भस्म हो जाओगे।

{ दोनों माथा रगड़ते हैं। कुसुम अंदर भागती है। }

गंगा : उठो, यह क्या करते हो ?

दोनों : ना कहो न पहले।

गंगा : हां

दोनों : ना !

{ गंगा दोनों को उठाती है। दोनों डरे एक दूसरे से चिपके हैं। }

शंभू : वो वो कहां गयी ? जो है सो की।

गोसाईं : वो.....वो.....वो.....।

गंगा : अरे खेल रही थी। मन्दिर से लेकर श्मशान तक वही खेल तो है। देखो, डर छूट जायेगा।

गोसाईं : नहीं यह खेल नहीं, यह प्रत्यक्ष है।

शंभू : हमने अपनी आंखों से देखा जो है सो की।

गंगा : अपनी आंखों से नहीं, भय की आंखों से। आंखे तो न जाने कब से बन्द हैं।

शंभू : बुलाओ उसे। नहीं तो चिपके रहेंगे हम जो है सो को।

{ गंगा कुसुम को बुलाती है। }

गंगा : देखा, इन्हें क्या हो गया ?

कुसुम : मंत्र पढ़ दिया है—सुपुट्टी माई सुपुट्ट।

गंगा : मजाक बन्द कर !

पुरुष : हम सब पर किसी ने कोई मजाक कर दिया है ?

कुसुम : तो इन्हें अलग कर दूँ। बड़ बड़ बड़, खुपुट्टी भाई खुपुट्ट।

{ दोनों अलग हो जाते हैं। }

गोसांई : यह क्या बत्तमीजी है।

शंभू : पंडित जी से शिकायत करेंगे जो है सो की.....।

गोसांई : क्या समझ रखा है !

कुसुम : सावधान ! फिर मंत्र मार दूंगी।

शंभू : अच्छा नहीं, हाथ जोड़ता हूँ जो है सो की।

गोसांई : शिकायत नहीं करेंगे। फिर मंत्र नहीं मारना, हाँ !

{ कुसुम अंदर जाती है। }

गंगा : यह क्या तमाषा है ! तुम लोग.....।

गोसांई : ना ना ना, तुम नहीं जानतीं एक था चरवाहा। नदी के किनारे जंगल के पास भेड़ बकरियां चरा रहा था। उधर से भागता हुआ आया एक सांप। बोला—मेरी जान बचालो। शिकारी मेरी जान के पीछे लगा है। चरवाहे ने सांप को अपने कंबल के नीचे छिपा लिया। शिकारी आया—इधर से कोई सांप जाते हुए देखा है ? ना, मैंने नहीं देखा। इधर से कोई सांप नहीं गया। शिकारी चला गया। सांप खुष हो गया—बोलो, तुम्हें क्या वरदान चाहिए ? चरवाहे ने कहा—महाराज, मुझे कोई ऐसा मंत्र बता दो कि जिसे कहते ही मेरी भेड़—बकरियां तुरन्त इकट्ठी हो जाएं। सांप ने मंत्र दे दिया। मंत्र पढ़कर जब वह बोलता है—सुपट्टी भाई सुपट्ट, तो सब इकट्ठा, एक दूसरे से चिपक जातीं। जब वह मंत्र पढ़कर कहता—खुपुट्टी भाई खुपुट्ट, तो सब अलग—अलग चरने चली जातीं।

गंगा : तो तुम लोग वही भेड़—बकरियां हो ?

शंभू : ओहो ! तुम समझती नहीं, तुम्हें तो अपने ज्ञान का घमण्ड है जो है सो की। चार अक्षर पढ़ क्या लिया सारा विष्वास, अन्धविष्वास हो गया। बात यह है कि.....क्या बात है बता दो.....।

गोसांई : बात यह है कि शंकर भगवान से वह मंत्र मिला पार्वती को। पार्वती जी ने वह मंत्र बताया एक लकड़हारे को। लकड़हारे ने वह मंत्र दिया उस सांप को। सांप से वह मंत्र मिला उस चरवाहे को। उस चरवाहे से वह मंत्र मिला उस राजा को जिसने यह देवी मंदिर बनवाया और यह गांव बसाया। उस राजा से वह मंत्र मिला एक घसियारे को। घसियारे ने उस मंत्र को एक कुएं में डाल दिया। उस कुएं के जल से वह मंत्र मिला तुम्हारे बाप को। भिक्षा मांगने उधर से गुजर रहे थे। प्यास लगी। कुएं से पानी पिया। सो वह मंत्र गया उनके पेट में। उनके पेट से वह गया एक खेत में। खेत में वह कुसुम बनकर खिला, जिसे तोड़ लायी यह लड़की, हुँ.....।

शंभू : तभी तो इसका नाम पड़ा कुसुम जो है सो की।

गंगा : बकवास !

शंभू : तुम्हें तो सब बकवास लगता है।

गोसांई : यह बात किसी और को नहीं मालूम, हॉ !

शंभू : कुसुम से कह देना—खबरदार, यह बात फिर नहीं हो हां। पंडित षिवानंद जी कहां हैं ?

गोसांई : हम यही पूछने आये थे।

गंगा : मंदिर में नहीं हैं ?

शंभू : ना, जो है सो की।

गोसांई : चारों ओर देख लिया ?

गंगा : बात क्या है ?

गोसांई : बड़ी गम्भीर बात है।

शंभू : भसम हो जायेगा यह गाँव जो है सो की।

गोसांई : चन्दरा की बीबी सीता, हिम्मत देखो सीता नाम रख दिया, चमार की जात.....अरे वही मन्दिर में घुस गयी देवी की पूजा करने।

शंभू : देवी के थान पर चढ़ गयी। मेरी सहुआइन ने देखा अपनी आंखों। जहां मेरे बाबा परबाबा के नाम पत्थर लिखा हुआ है, उसे कांडती हुई चली गयी वह चमारन की जात, जो है सो की.....।

{ दौड़ा हुआ चंदरा आता है।}

चंदरा : अरे पंडित जी मिल गये। श्मषान घाट पर। देवल भइया को अब सिद्धि मिल जायेगी। बस थोड़ी सी कसर है। देवल भइया अचेत पड़े थे ओर पुरोहित जी से धड़ाधड़ संस्कीरत में बात कर रहे थे।

शंभू : अरे देवी बोल रही होगी। जा रहा हूं दर्शन करने जो है सो की।

चंदरा : सब यहीं आ रहे हैं पूरी भीड़ लगी हुई थी। सब गनगन गनगन हो रहा था।

{ देवल को सम्हाले षिवानंद आते हुए दिखते हैं। लोग जमीन पर झुककर प्रणाकर करते हैं। गंगा चुप खड़ी देख रही है।}

गंगा : (स्वगत) यह क्या है ? जीवन से भटक कर तू कहां चला गया ? यह कैसा जंगल है, जहां सारी भूमि दलदल मिट्टी की है। जो सहारा दे रहा है, वह उस घने जंगल के बीच ले जा रहा है, जहां से फिर कोई वापस नहीं लौटता। मेरे प्राण ! तुम जीवन से भटक कर धर्म, राजनीति में क्यों जाते हो ? बार—बार वही क्यों ? लौट आओ। जीवन तट पर खड़ी कब से पुकार रही हूं।

पुरुष : यह क्या है ? जीवन से भटकर कर तू कहां चला गया ? वह जंगल, जहां सारी भूमि दलदल मिट्टी की है।

पुरुष : गंगा बैठी सूप से अन्न छांट रही है। कुसुम बैठी हाथ से कपड़े सिल रही है।

गंगा : काफी रात हो गयी—अब जाकर सो जा। जो बचा है, मैं कल सिल लूंगी। (रुककर) चावल में से तिल जैसे अलग होना ही नहीं चाहता। चावल किनारे लगाओ तो तिल उछल कर आ जायेगा। तिल फटको तो चावल के नीचे दुबक जायेगा।

{ सूप से अन्न फटकने लगती है। }

कुसुम : दीदी, कोई कहानी कहो।

गंगा : मैं कहती हूँ जाकर सो जा।

कुसुम : देवी का यह कपड़ा सिले बिना आज नहीं सोऊंगी, चाहे जो हो जाये।

गंगा : अरे सप्तमी के अभी पांच दिन हैं।

कुसुम : देवी पूजा के पांच दिन चुटकी बजाते ही निकल जाते हैं। देवी का पूरा श्रंगार बनना है। पंडित जी का हुकुम है सारा काम पंचमी तक हो जाना है।

{ रास्ते पर अचानक सीता चीख कर गिरती है। चंद्रा ने उसे लाठी से मारा है। }

चंद्रा : आगे बढ़ी तो पैर तोड़ दूंगा। क्या समझ रखा है। सोचती थी। भागकर निकल जाऊंगी। जा निकल जा। जा... उठ.....बुला जिसे बुलाना है। मचा गोहार !

{ गंगा दौड़ती है। सीता को सम्हालती है। }

गंगा : समझता है तू बड़ा बली है। स्त्री पर हाथ उठाते शर्म नहीं आती। उस पर हाथ क्यों नहीं उठाता जहां ताकत है ? छी ! छी !! डूब मर चुल्लू भर पानी में !

चंद्रा : कहे देता हूँ हमारे बीच में मत पड़ो।

गंगा : मैं बीच में हूँ। पड़ने का सवाल नहीं है।

सीता : यह दाढ़ीजार न मुझे घर में रहने देता है, न गांव छोड़ने देता है।

{ रोने लगती है। }

गंगा : किसने दिया तुझे मारने का अधिकार ?

चंद्रा : यह पूछने वाली तू कौन ?

गंगा : पूछती हूँ—तू कौन है ?

चंद्रा : मैं इसका मालिक।

सीता : यह मेरा दुष्मन।

चंद्रा : अगर मैं दुष्मन तो दे मेरे रूपये। दे।

गंगा : रूपये पट गये।

चंद्रा : इसीलिए यहां भागकर आयी कि बच जायेगी ? चल यहां से, चलती है या नहीं ?



गंगा : मारन चाहता है ? ले मार, उठा हाथ अगर है हिम्मत कायर! बुजदिल ! इसे अबला समझ रखा है !

चंदरा : बचा लोगी !

गंगा : यह खुद बचायेगी। अगर फिर हाथ उठाया तो हाथ तोड़ देगी।

चंदरा : बड़ी आर्यीं हअं ! पहले खुद अपने आप को बचा लो, हअं !

कुसुम : अरे चंदरा बंदरा, इधर आ। आ इधर।

चंदरा : मुझे आग लगी है। छोड़ो नहीं मुझे। अपनी दीदी को मना कर दो। इसे मत ले जाएं घर के अन्दर, नहीं तो जुलुम होगा।

{ गंगा सीता को अंदर ले जाती है। }

कुसुम : इधर आ, बैठ ! कहती हूं बैठ।

चंदरा : मुझसे जबान मत लड़ाओ, कहे देता हूं हां।

{ चंदरा बैठता है। कुसुम बढ़कर लोटे से पानी अंजुरी में लेकर उसके ऊपर छिड़कती है। }

चंदरा : यह क्या बत्तमीजी है !

कुसुम : तू गुस्से से जल रहा है न ? जरा आग ठंडी कर दूं (छिड़कती है) बड़ी तेज आग है रे। छन्न छन्न करता है !

चंदरा : (भागता है) खबरदार ! बहुत बुरा होगा। नहीं जानती मेरा गुस्सा ! मेरा गुस्सा बहुत बुरा है।

कुसुम : आ तेरे सिर पर पानी डाल दूं। आ चंदरा बंदरा। बोल अब सीता कहां जाय ? तेरा धन नहीं पटा ? मेहरी बनाकर रखा, गुलाम की तरह काम लिया।

चंदरा : सुन लो, मेरी ओर पंडित जी हैं। भूलना नहीं ! यह कोई खेल नहीं।

{ जाता है। }

कुसुम : (अपने आप) मार मार कर तेरा भरता बना दे। सीता ! ओ री सीता ! आ, भाग गया। अरे जरा अपना चेहरा तो देख लूं। बहुत दिन हो गए। (देखती है) अरे यही हूं मैं ? ना ना यह नहीं हूं मैं। मैं वह हूं। मेरी आंखों को प्रकाश अच्छा लगता है। शाम सबेरे मेघ घटा अच्छी लगती है। सबके मुख अच्छे लगते हैं.....।

{ सीता आती है। }

कुसुम : तेरा मुख भी अच्छा लगता है रे। अरे तू अब तक रो रही है ? आ सो जा यहीं। सो जा मैं बैठी यहां सिलूं देवी का दुपट्टा, तू यहां सो जा मति कर ठट्टा, वह चला गया उल्लू का पट्टा।

{ सीता जमीन पर सो जाती है। }

कुसुम : अरे यह तो लुढ़कते ही गयी सो। सुई में तागा डालूं या तागे में सुई। मुझे भी अब नींद आ रही मुई। मिट्टी का गद्दा है गद्दे में धूल की रूई। नींद में कोई सपना न आये उई उई।

{ वह भी अपनी जगह पर लुढ़क कर सो जाती है। कुछ ही क्षणों बाद भीतर से गंगा आती है। }

गंगा : कुसुम ! ओ कुसुम ! लो सो गयी ! जहां लुढ़की वहीं सो गयी। इसे जगाना भी तो एक समस्या है। आंखें मूंदे चलने लगेगी। सोते-सोते बातें करती रहेगी। क्या खेल है, क्या है सच्चाई, खुद जाने या भगवान जाने।

{ अंदर जाती है। कुछ ही क्षण बाद बाहर से देवल आता है।

सोती हुई कुसुम को देखकर प्रसन्न हो जाता है। }

देवल : तीनों लोक, जिनके स्वामी चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि, यहां प्रतिष्ठित है। इसके ऊपर ज्योतिस्वरूप ओंकार का पावन स्थान है। तीनों काल, तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नियां और तीनों स्वर यहां स्थित हैं। ( कमर से अस्त्र निकालता है।) ओं दक्षिणामूर्तये नमः खिरसि। श्री त्रिपुरम् सुंदरी देवताये नमः.....।

{ कुसुम के चारों ओर परिक्रमा करता है यही मंत्र पढ़ता हुआ। }

देवल : ओं ह्रीं श्रीं षिरसे स्वाहा।

{ यहां मंत्र पांच बार कह कर अस्त्र से कुसुम की बलि करना चाहता है। सीता चीखकर देवल पर सिंहनी की तरह टूटती है। कुसुम घबड़ाकर उठती है। भीतर से दौड़ी हुई गंगा आती है। सीता से देवल मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रहा है। दौड़े हुए मंदिर की ओर से शिवानंद आते हैं। }

सीता : पकड़ो। पकड़ लो इसे। यह कुसुम की हत्या करने जा रहा था।

{ देवल छुड़ाकर भाग जाता है। }

गंगा : यह क्या है ? बोलो। उत्तर दो, यह क्या है ?

इसका जवाब कौन देगा ? बोलो।

शिवानंद : देवल तुम्हारा पति है यह मत भूलो।

गंगा : वह पहले आपका पुत्र है, इसे क्या भुलाया जा सकता है ?

शिवानंद : कान खोलकर सुन लो। तुम.....तुम....और तुम... यह बात यहां से कहीं बाहर नहीं जानी चाहिए।

सीता : कहूंगी। मैं कहूंगी। चिल्ला चिल्ला कर कहूंगी।

{ सन्नाटा }

शिवानंद : सुन ! देख मेरी ओर ! चंद्रा तुझे अब घर से बाहर नहीं निकालेगा। तेरे बाप का कर्ज पट गया। अपनी जबान बन्द रखेगी !

सीता : सच, गरज पट गया ?

शिवानंद : हां चुप रहना होगा।

सीता : मैं किसी से नहीं कहूंगी। देख लेना, इस मामले में जबान नहीं हिलाऊंगी। अपनी कसम। भवानी माई....।

{ जाने लगती है }

गंगा : याद रखना, मुझ में तुझ में कोई फरक नहीं। तेरी वजह से कुसुम की जान बच गई, कृतज्ञ रहूंगी।

{ सीता चली जाती है }

कुसुम : मैं कहूंगी ! मुझे कहना होगा !

गंगा : किससे कहेगी ?

कुसुम : सारे गांव को बताऊंगी। ले जाओ, मुझे देवी के वस्त्र नहीं सिलने। बोलो, अगर मेरी बलि हो गयी

होती, अपने पूत का क्या करते ? मुझे गंगा में फेंककर कह देते, मैं, खुद डूब गई। विष्वासघाती..... झूठे !

गंगा : चुप रह।

कुसुम : अब चुप नहीं रहूंगी।

षिवानंद : अंदर जाकर चुपचाप सो जा।

कुसुम : सोचते हो, अब मुझे नींद आयेगी। मेरी नींद के हत्यारे.....।

षिवानंद : अब वह यहां से भाग गया।

कुसुम : पर वही चारों ओर है। वह यहीं खड़ा है। वही देवी मन्दिर में है। वही हर अंधेरे में छिपा है।

षिवानंद : चल देवी के दर्शन कर ले, तेरा भय दूर हो जायेगा।

कुसुम : भयभीत वही था जो मेरी बलि देना चाहता था। तुम हो भयभीत जो हमें भय दिखाकर गूंगा बनाना चाहते हो।

{ बाहर से दौड़ते हुए मालिक, गोसाई, शंभूषाह आते हैं। कुछ क्षणों बाद मनोहर आकर अलग खड़का रह जाता है। }

मालिक : यह क्या हो गया पंडित जी ? मुझे इसी का डर था, देवल मानो पागल हो गया !

गोसाई : सारे गाँव में चिल्ला-चिल्ला कर कहता रहा-‘मेरी साधना भंग हो गयी। मैं कुमारी कुसुम की बलि नहीं दे पाया। मैं कुमारी कुसुम की बलि नहीं दे पाया। सीता ने विघ्न डाला।’

शंभू : देवी महाचंडिका पूरे गांव का सत्यानाष करेंगी जो है सो की।

गोसाई : चिल्लाता चीखता हुआ गंगा में कूद पड़ा देवल। उस पार जाकर बोला-मैं जल रहा हूँ। सब को जलाकर छोड़ूंगा।

षिवानंद : मालिक, हाथ जोड़ता हूँ-यह खबर कहीं पुलिस तक न पहुंचे।

मालिक : एक शर्त पर ! देवल फिर यहां नहीं लौटेगा।

{ सन्नाटा छा जाता है }

मालिक : वह खुद अब यहां नहीं लौटेगा।

गोसाई : पर गंगा बहू का क्या होगा ?

गंगा : गंगा बहू का क्या होगा ? गांव की ही लड़की थी। पिताहीन, मातृहीन.....दण्डस्वरूप बहू बना दी गयी। सब कुछ स्वीकार करना पड़ा। अब सब कुछ स्वीकार करती हूँ। सब कुछ स्वीकार करूंगी। जो आप लोग देंगे वही तो पाऊंगी। जो हैं आप लोग, वही तो देंगे। डर तो केवल छिन जाने का होता है-जहां कुछ है ही नहीं मेरा, जहां सब कुछ मेरा है, वहां कैसा भय ? आप लोग अपनी चिंता कीजिए। गंगा का कुछ नहीं होगा।

{ कुसुम का हाथ पकड़ अंदर ले जाना चाहती है। }

कुसुम : मुझे नहीं जाना इस घर के अंदर।

गंगा : इस घर में मैं नहीं हूँ ?

कुसुम : तू भी सुरक्षित नहीं।

गंगा : सुन रहे है न ? यह क्या कह रही है इसका ? जवाब कौन देगा ? बोलो.....

मालिक : जो हुआ, हमें उसके लिए बहुत दुख है। ऐसा अब फिर नहीं होगा।

गोसांई : पंडितजी को क्या कहना है ?

षिवानंद : मैं लज्जित हूँ।

पुरुष : हमें दुख है, हम लज्जित, हां वही हैं, न जाने कब से हैं। पर क्यों हैं ? इसका मूल क्या है ? क्या हम इससे छुटकारा पाना चाहते हैं ?

मालिक : हां चाहते हैं।

गंगा : तो सुन लो, इस झूठ, प्रपंच, हिंसा की जड़ है, धर्म के नाम यह सारा आडंबर.....यह अंधविश्वास..... अंधशक्ति का यह भयंकर खेल।

षिवानंद : क्या कहना चाहती हो, सारा दोष मेरा है ?

गंगा : हम सब का है। इस पूरे विषाक्त वायुमंडल का है इसी का षिकार हुआ मेरा पति, मेरा घर, यह पूरा गांव।

{ सारे लोग परस्पर बातें करने लगते हैं। }

मालिक : सारा गांव कैसे हुआ ? इस बात पर जरा विचार करना चाहिए।

शंभू : वायुमंडल अगर विषाक्त हो जाता तो क्या कोई यहां जिंदा बच पाता ? जो है सो की.....।

गोसांई : अरे सब कहने की बातें हैं। असली बात यह कि सब भाग्य का फेर है। शादी से पहिले तो देवल

ऐसा नहीं था। अगर यह उसे प्यार करती, सम्हालकर रखती तो वह कैसे बिगड़ता ? कोई अब तक बाल बच्चा भी तो नहीं हुआ।

मनोहर : हुआं ! इनके लिए सारी समस्या की जड़ बाल-बच्चा है।

शंभू : यह जो कुसुम है, बड़ी बदमाश लड़की है। इसने देवल को चिढ़ाया होगा जो है सो की।

मनोहर : हुआं चिढ़ाया होगा, कुसुम सो रही थी। अरे कुमारी की बलि देकर शक्ति सिद्ध करना चाह रहा था।

गोसांई : चुप रह, शूद्र की जात, जबान लड़ाने चले हैं।

मालिक : ऐ ! खबरदार, किसी को शूद्र कहना अपराध है।

षिवानंद : सब मेरे खिलाफ खड़े हो रहे हैं। पर नहीं जानते मेरी ताकत।

गोसांई : इसकी बात हम मानलें कि सारा वायुमंडल विषाक्त है। हम जिंदा नहीं मुर्दा हैं ?

मनोहर : यह भी कोई जिन्दगी की निषानी है। शक्ति सिद्धि के लिए दूसरे की बलि ? जीवन यहां नहीं दूसरे लोक में है ?

{ गंगा कुसुम का सिर अपनी गोद में टिकाये बैठी है }

गंगा : धर्म वह नहीं है, जिसे मंदिर में बन्द कर रखा है। जो धर्म जीते हैं, मन्दिर में उनका प्रवेश नहीं.....।

धर्म मिट्टी में है। ऊपर केवल हिंसा है। जो शक्तिषाली है, वही क्यों बनना चाहता है धर्मात्मा ?

पुरुष : बोलो उत्तर दो। कोई नहीं देता उत्तर। कोई विष्वास जब संगठन का रूप ले लेता है, तो वहां हिंसा जन्म लेती है। हर नए को वह संस्थागत पुराना अपनी शक्ति बनाए रखने के लिए मार देना चाहता है।... जो शुरू से देख रहा था, यहां, वहां, उस श्मशान घाट पर, वह चलता हुआ यहां पहुंचेगा इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। ....अरे सब जा रहे हैं। गंगा और कुसुम को छोड़ सब चले जा रहे हैं। जाकर सो जायेंगे ? नींद कैसे आ जाती है ? ऐसी घटनाएं इस माटी पर बहुत हुई हैं क्या ?

{ सब जाते हैं। }

### तीसरा दृश्य

पुरुष : ऐ ! इधर आओ ! इतने सारे लोग कहां जा रहे हैं ?

शंभू : अरे देवी मंदिर में एक बहुत बड़ा महात्मा साधू आया है।

पुरुष : तो क्या हो गया ?

शंभू : बस, बस, मुझे जल्दी वहां पहुंचना है जो सो की।

पुरुष : क्यों ? किसलिए ?

शंभू : इतनी फुरसत नहीं, जो है सो की।

{ चला जाता है। सीता और मनोहर आते हैं। }

सीता : सब भागे जा रहे हैं मांगने। भीख मांगने के लिए भगवान को बनाया है।

मनोहर : साधू महात्मा को पुजारी जी इसलिए लाते ही हैं—चढ़ावा चढ़े ठनाठन। तेरा चंदरा भी गया होगा।

सीता : अरे सुनते ही भागा। दूसरी औरत मांगने गया है। ऐसी औरत जिसकी गोद में एक बच्चा हो।

मनोहर : अच्छा।

सीता : तभी तो मुझे इतना मारता है। घर से निकालता है। क्या बताऊं। सब बात कही तो नहीं जात।

{ चंदरा आता है। }

चंदरा : यहां खड़ी है। यह नहीं हुआ कि महात्मा के दर्शन कर लेती। अभागन कहीं की। अरे भाग खुल जायेगा।

सीता : खुद तो दर्शन कर लिया ना ? मन्दिर के बाहर खड़ा—खड़ा.....।

चंदरा : अरे तो क्या हो गया, दरसन से मतलब कि बकवास करने से।

सीता : बहुत देखे ऐसे साधू महात्मा। ऐसा कोई न मिला जो सच बोले !

चंदरा : अरी ससुरी सच कहीं बोला जाता है रे !

सीता : फिर साधू महात्मा किस बात के ?

मनोहर : जैसे हम होंगे वैसे तो होंगे साधू महात्मा।

चंदरा : तू कौन होता है हमारे बीच टांय टांय करने वाला ? अरे ऐसे हैं महात्मा कि सारा गांव जवार टूट पड़ा रहा है।

सीता : सब देख रही हूं !

चंदरा : क्या देख रही है ? बता ना, बोल !

सीता : मारेगा ? ले मार !.....यही देख रही हूं—किस माटी पर खड़ी हूं।

चंदरा : खड़ी रह ! भाड़ में जा ! जैसा करम वैसा धरम !

{ जाता है। }

सीता : भाड़ में तो हूं ही।

चंदरा : कितनी भीड़ जा रही है। पुजारी की दसों उंगलियां घी में। खूब कमाई हो रही है।

{ मनोहर जाता है। }

सीता वहीं खड़ी देखती रहती है। }

पुरुष : किस माटी पर खड़ी है ? क्या देख रही है ?

सीता : बात ऐसे करेंगे, जैसे कोई शास्त्र पढ़ रहे हों—जैसा करम वैसा धरम ! बात कहकर छुट्टी। खुद नहीं देखेंगे अपना करम क्या है ? बस, बकर बकर कर छुट्टी ले लेंगे—जैसा करम वैसा धरम। जिस माटी पर खड़ी हूं—यह दोगली हो चुकी है। सोचना कुछ, करना कुछ।

पुरुष : तू क्या ऐसी नहीं ? कुसुम की हत्या की बात.....।

सीता : जहां नीचे से ऊपर तक इतना डर है, वहां क्या करती है ? इस गांव में मेरा कौन है ?

पुरुष : गंगा नहीं है ?

सीता : गंगा दीदी।

{ देखती रह जाती है। }

पुरुष : जिस माटी से हम पैदा हुए, जिस माटी पर हम खड़े हैं, मूल यही है क्या ? यही क्या यह देख रही है ? मेरा पीछा करने वाला वह मेरा अदृश्य पुरुष अब दिखने लगा है मुझे। जैसे जीवन का पीछा धर्म कर रहा है। जीवन उससे भयभीत है। वह क्या है ? अभाव है....अभाव है.....जीवन जितना खाली—रिक्त रह गया है, वही धर्म बन गया है। जो खाली है वही पीछा कर रहा है। जो भूखा है वही इतना बोल रहा है। वही भागा गांव से शहर। वही बार बार गांव की ओर लौटता है। वही लोग हैं.....भागे हुए जो रहे हैं मन्दिर की ओर.....अपने घरों से महात्मा के पास.....घर से श्मशान.....श्मशान से घर.....विश्वास से अंधविश्वास.....अंधविश्वास से विश्वास के पास। मेरे पास बुद्धि है, उनके पास विश्वास है.....ये दोनों पैदा हुए हैं उसी अभाव में..... उसी रिक्ता से.....

सीता : क्या बड़बड़ा रहे हो ?

पुरुष : एक ही माटी पर हम सब खड़े हैं। यह गांव केन्द्र है, धुरी है, जिस पर सारा कुछ घूम रहा है.....। देवी प्रसादी आज कुछ गा नहीं रहा है।

### चौथा दृष्य

पुरुष : देवी प्रसादी खड़ा है। कुसुम भीतर से निकलती है। यह कुछ गा क्यों नहीं रहा ?

कुसुम : पायं लागूं बाबा !

प्रसादी : निर्भय रह ! निर्भय !

कुसुम : भय है, तभी तो कह रहे हैं निर्भय रह। कुछ गाते क्यों नहीं ?

प्रसादी : जब से तूने गाना छोड़ दिया, मुझसे कुछ नहीं गाया जाता रे !

कुसुम : कहां मैं कहां तुम ?

प्रसादी : जो तू है, वही तो मैं हूं।

कुसुम : आप तो आशीष देते हैं—निर्भय रहूं।

प्रसादी : झूठ बोलता हूं रे।

कुसुम : क्या, आज कैसी बात कर रहे हो ?.....दीदी आज देवी मंदिर गई हैं।

प्रसादी : हां, देवी ने मेरे कानों में कहा—देख, मेरी बेटी आई है।

कुसुम : मंदिर में कोई साधू आया है। बड़ी भीड़ है। दूर—दूर से आ रहे हैं दर्शन करने।

प्रसादी : मैं तो गंगा माई के दर्शन करने आया हूं।

कुसुम : (सहसा) दीदी आ रही है।

{ मूर्तिवत चुप गंगा आती है।

दोनों एकटक देखते रह जाते हैं।}

कुसुम : दीदी !

प्रसादी : विध्न मत कर। दीदी जलती हुई आग में खड़ी है। दीदी से प्रेम करती है। दीदी प्रेमिका है। प्रेम खंडन नहीं जानता। उसके लिए अवकाश कहां ? प्रेम जीने के लिए एक से अधिक चाहिए। तभी तो यह संसार है। मां यही सोच रही है। मैं सुन रहा हूं यह आनाहद संगीत।

कुसुम : दीदी ! दीदी !

प्रसादी : यहां प्राप्त करना कुछ भी नहीं, केवल समझना है। क्योंकि जीवन तो संबंधों में है। सबके साथ संबंध ! अपने आप से संबंध ! दीदी संबंधों से गुजर रही है। और वही देख रही है।

कुसुम : दीदी !

प्रसादी : ना ना ना ! दीदी का अनाहद संगीत सुन। नाद जब व्यक्त होगा तो स्वर हो जायेगा। स्वर से शब्द बनेंगे। दीदी स्वर ढूँढ रही है। उसके लिए पहले सन्नटा बन रही है। यही शब्द बन जायेगा। शब्द पर रुकना नहीं। प्रिय और अप्रिय पर रुकना नहीं दीदी जो देखकर लौटी है...।

गंगा : हे ईश्वर मैं क्या देख रही हूँ ? मुझे क्या-क्या दिखाना चाहता है ? जो देख रही हूँ उसे कहना होगा ? यह कैसी जिम्मेदारी दे रही हो मां ?

कुसुम : वह साधू कौन है ? क्या है वह ?

गंगा : नहीं नहीं। चुप रहूंगी। बता नहीं सकती।

प्रसादी : मां को बताना होगा।

गंगा : क्यों ? मैं नहीं बताती।

प्रसादी : फिर देखा क्यों ?

गंगा : तुम जो देखते हो बताते हो ?

प्रसादी : तुम बताओगी तभी मैं देखूंगा।

गंगा : मैं नहीं बताती। नहीं बताऊंगी !

{ मंदिर की ओर से उस साधू का प्रवेश।

उसके पीछे-पीछे अनेक लोग दौड़े आते हैं। }

साधू : चले जाओ यहां से। जाओ। चले जाओ। किसी को देखना, मिलना नहीं चाहता। चले जाओ !

षिवानंद : मुझे भी जाना होगा ?

साधू : मेरे साथ और कोई नहीं रहेगा।

षिवानंद : ये तीनों ?

साधू : मैं इन्हीं से मिलने आया हूँ। जाओ !

{ सब चले जाते हैं। }

साधू : क्या तू सच बोल सकती है ?

गंगा : नहीं।

साधू : क्या कोई सच बोल सकता है ?

गंगा : हां।

साधू : वह कौन है ?

गंगा : तुम।



{ सन्नाटा }

साधू : देवी मंदिर में क्यों गई ?

गंगा : देखने।

साधू : क्या देखा ?

गंगा : नहीं बताऊंगी।

साधू : मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया ? अपना माथा मेरे चरणों पर क्यों नहीं रक्खा—जैसे सारे लोग मुझे श्रद्धा दे रहे थे.....

।

गंगा : जो है नहीं, मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकती।

साधू : मैं नहीं हूँ ?

गंगा : मुझसे क्या क्यों कहलवाना चाहते हो ?

साधू : क्योंकि केवल तूने देखा।

गंगा : क्योंकि तुमने देखा !

साधू : वह क्या था ? बोल, वह क्या था ? वह क्या है ?

गंगा : मेरा पति।

{ षिवानंद छिपे खड़े थे—उनके हाथ से थाली गिरकर झनझना उठती है। }

षिवानंद : खबरदार ! यह रहस्य तू किसी को नहीं बतायेगी।

गंगा : अब बताना ही होगा।

षिवानंद : फिर इसी क्षण यहां से निकल जाना होगा तुझे। दूर हो जा। निकल जा यहां से। चली जा।

साधू : क्यों ?

षिवानंद : यह मेरा घर है।

साधू : और मेरा ?

षिवानंद : तू अब वह नहीं, जिसका अपना घर होता है। कोई अधिकार होता है। अब सच नहीं बोल सकती। असत्य को अपने असत्य की रक्षा के लिए अब केवल असत्य बनकर रहना होगा ? इसी में है सब का कल्याण।

प्रसादी : मां।

गंगा : मैं ऐसा कल्याण नहीं चाहती।

षिवानंद : फिर यहां से इसी क्षण निकल जाना होगा तुझे। यहां नहीं रह सकती।

गंगा : स्वीकार है।

{ कुसुम को संग लेकर चल पड़ती है। }

षिवानंद : रूको ! मैं ले चलता हूं तुझे छोड़ने। (मंदिर की ओर बढ़कर) सुनो श्रद्धालु लोगों ! आवो, महात्मा जी के आशीष लो। (सब दौड़कर आते हैं और साधू के चरणों पर माथा झुकाते हैं।) हमें एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ रहा है।

{ मालिक आते हैं। }

मालिक : यह अचानक कहां ?

षिवानंद : महात्मा जी की आज्ञा है—इन्हें तत्काल तीर्थाटन पर भेज दिया जाये।

कुसुम : यह झूठ है।

{ षिवानंद उसे खींच लेते हैं। तीनों के साथ षिवानंद जाते हैं। साधू मूर्तिवत खड़ा है। लोग उसके चरणों में बैठे अपलक उसे निहार रहे हैं। मालिक खड़े देख रहे हैं। }

पुरुष : (देखता हुआ) कार्य क्या है, कौन है कारण ? कार्य और कारण का संबंध जोड़ना असंभव है। यह सब हो रहा है। मैं मात्र उसका दर्षक हूं या सब हो चुका है जिसका मैं कभी हिस्सेदार था, और इन सबसे आंख बचाकर भाग निकला हूं। यही लोग हैं। यही केन्द्र है। यही है। यही हूं मैं। सब जुड़कर आज एक हो गया !

### तीसरा अंक

पुरुष : साधू (देवल) कम्बल ओढ़े अस्वस्थ चुप बैठा है। षिवानंद भीतर से पात्र में कोई पीने की औषधि ले आ रहे हैं।

षिवानंद : लो यह दवा पी लो।

{ वह मना करता है। }

षिवानंद : मंदिर में लोग तुम्हारे दर्शन के लिए बैठे हैं। आज पूरे सोलह दिन हो गये तुम्हें इसी तरह बैठे। लोगों को बता दिया गया है कि आज मंदिर में तुम्हारा दर्शन होगा। तुम कुछ बोलते क्यों नहीं ? लोग तुम्हें सुनना चाहते हैं।

देवल : (चिल्लाकर) मैं पत्थर हूँ।

षिवानंद : पत्थर की ही तो पूजा है।

देवल : मैं झूठ हूँ।

षिवानंद : अब झूठ ही सत्य है। लोगों को इसी पर श्रद्धा—विश्वास है। तुम्हें चलकर मंदिर में दर्शन देना ही होगा। वरना लोग यहीं आ जायेंगे।

देवल : तुम्हें उनके चढ़ावे से मतलब है। क्या फर्क पड़ता है तुम्हें ? धन चाहिए बटोरते चलो।

षिवानंद : लोग सन्देह करने लगेंगे। मालिकसिंह जी को संदेह हो चुका है।

देवल : (प्रसन्न) कि मैं देवल हूँ।

षिवानंद : गंगा बहू को अचानक उस तरह घर से क्यों निकाला गया। शीँँँँ (सहसा) शांत, लोग आ रहे हैं।

{ लोग हाथों में कपड़ा धन, धान्य, फल—फूल लिए आते हैं। और साधू के चरणों पर चढ़ाकर माथा झुकाकर प्रणाम करते हैं। षिवानंद सारा सामान बटोरकर अंदर ले जाते हैं। }

शंभू : आ हा हा ! महात्मा जी समाधिमग्न हैं, जो है सो की। अरे बीमार हैं। कभी तेज बुखार चढ़ जाता है, कभी सारा शरीर टंडा पड़ जाता है। लीला देखों जो है सो की।

गोसांई : अरे तनमाया की लीला दिखाते हैं कि देखो यह शरीर कितना क्षणभंगुर है। अरे परतापपुर का वह तेली आया था। बाबा का प्रसाद लेकर गया—खोई हुई आंख वापस मिल गई।

{ षिवानंद बाहर निकलते हैं। }

सब : पायं लागी पंडित जी ! माथा लागी पुरोहित जी !

षिवानंद : यहीं चुपचाप महात्मा जी के दर्शन करो। मंदिर हो आऊं। लोगों को बता दूँ आज दर्शन नहीं होगा। देवी की आरती भी कर लूँ।

{ मनोहर, और सीता—एक साथ आते हैं। }

शिवानंद : यहां भीड़ करने की कोई जरूरत नहीं।

मनोहर : मंदिर में नहीं जाने देते तो क्या यहां भी मनाही होगी ! हमारे आने से ही भीड़ हो जाती है ?

सीता : हम भी चढ़ावा चढ़ाते तो भीड़ न होती।

शिवानंद : बड़बड़ाना बन्द करो या.....।

{ चले जाते हैं। }

चंदरा : तू यहां क्यों आई रे ? घर में कोई कामकाज नहीं ? मैं कहता हूँ—इन लुच्चों का साथ छोड़ दे। दर्शन कर ले दर्शन !

सीता : आ हा आ ! तेरे दर्शन करने आयी हूँ।

चंदरा : देख लो महाराज, इसी तरह व्यंगवाण मारती है।

सीता : अरे जो मांगने आया था, मिला कि नहीं ?

चंदरा : सुन लो पंचों, फिर मेरा कसूर मत देना !

गोसांई : विध्न मत डालो। महात्मा जी को कष्ट होगा !

चंदरा : तू यहां से भागती है या नहीं !

सीता : नहीं।

{ बैठ जाती है। }

सीता : महात्मा जी से पूछने आयी हूँ, गंगा दीदी को किस तीरथ भेजा है ?

चंदरा : अरे ! लात की जात बात से नहीं मानेगी, चल यहां से। उठती है या नहीं ?

{ इसी क्षण बाहर से कमल आता है। }

कमल : यह सब क्या है ? (पुकारता है) भाभी !

{ अन्दर जाता है। }

शंभू : पढ़कर इतने दिनों बाद लौटा है। कमल को कुछ पता नहीं जो है सो की।

सीता : हाय, भाभी को ढूँढ रहा है !

{ कमल आता है। }

कमल : भाभी कहां हैं ? कुसुम कहां गयी ? यह सब क्या है ? यह कौन है ?

सीता : अब जवाब दो न, गंगा कहां है, कुसुम कहां है ?

गोसांई : वे तीर्थयात्रा पर गयी हैं।

सीता : झूठ। बिल्कुल झूठ। तुम्हारे बाप ने घर से निकाल दिया है।

कमल : क्या ?

मनोहर : सच है कमल बाबू।

कमल : यह कौन है ?

शंभू : महात्मा । बहुत बड़े महात्मा हैं जो है सो की ।

{ पास जाकर देखता है । }

कमल : भइया ! देवल भइया ! !

देवल : कमल ।

{ कमल के पैरों को पकड़ लेता है । लोग आश्चर्य चकित रह जाते हैं । मन्दिर से आरती का संगीत उभरने लगता है । }

देवल : (उठता हुआ) जिसने छीन ली थी मेरी वाणी, जिससे भयभीत मानव से पशु बना था, उसी को संबोधित कर आत्म-परिचय देता हूँ—मैं हूँ देवल । देवल हूँ मैं । जो मैं नहीं था, पर बना था वही, वह मैं नहीं, मेरी प्रतिक्रिया थी—जो था सरासर झूठ, पर सच दिखाया गया था, वही थी मेरी व्याधि—कुछ न कह पाने की कायरता । मारो मारो, पत्थर मारो मेरे कापुरुष को ! थूको थूको मेरे झूठे प्रपंची महापुरुषों को ।

{ षिवानंद दौड़े आते हैं । }

देवल : यह है मुझे अघोरी हत्यारा बनाने वाला ! यही है मुझे साधू महात्मा करार देने वाला ! मुझ जैसे बीमार अस्वस्थ को अपने अधर्म का साधन बनाया । अपने लिए मेरे पर जिसे इस घर से निकाल बाहर किया, वही है—वही है, जो मैं फिर से बोल पा रहा हूँ ।

{ षिवानंद गुस्से में देवल का गला दबोच लेना चाहता है, इसी बीच मालिकसिंह आकर बचाते हैं । }

देवल : पर यह सब कह कर मैं नहीं हो सकता दोषमुक्त । जो कुछ किया मैंने, जो कुछ भी हुआ मुझसे, सबके लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ ।

{ सन्नाटा }

कमल : (षिवानंद की ओर बढ़ता है ।) कहां किधर दूढ़ने जाऊं ? कहां है मेरी गंगा भाभी ?

षिवानंद : उसी से पूछो ।

सीता : छोड़कर तुम आये..... ।

मनोहर : सोच लिया था अब गंगा का कोई नहीं ।

षिवानंद : मेरे खिलाफ अगर किसी ने कोई आवाज उठाई तो उसका सर्वनाश कर दूंगा ।

कमल : अपना सर्वनाश क्यों किया ?

मालिक : जवाब दो षिवानंद ।

देवल : यह स्वयं अपने खिलाफ है, जैसे मैं अपने खिलाफ था । मैंने भोगा है उस आत्मविरोध का नरक । धर्म कहता है—काम, क्रोध, मद लोभ । जो जीते हैं उसी के विरोध में खड़े हैं, इससे बड़ा सर्वनाश और क्या हो सकता है ? (रुककर) कमल, जाओ गंगा लाने, यहां बैठा उसकी प्रतीक्षा करूंगा ।

षिवानंद : गंगा अब यहां नहीं लौट सकती ।

{ तेजी से मंदिर की ओर जाता है । }

कमल : गंगा बह रही है इस गांव के तट पर। इस माटी के कण-कण में वही गंगा है।

{ कमल के साथ मनोहर जाता है। }

मालिक : जो देख रहा हूं, विष्वास नहीं होता।

देवल : विष्वास का सूत्र किसी अदृश्य के हाथ में दे रखा था, तभी जो प्रत्यक्ष है वह दिखाई नहीं पड़ा। मैं तैयार हूं दंड भोगने के लिए।

सीता : अब तक क्या दंड नहीं भोगा ?

चंद्रा : अब तू भोगेगी दंड। सून ले, मैंने निकाल बाहर कर दिया तुझे अपने घर से।

सीता : मैं तेरे घर से उसी छन निकल गयी, जिस छन गंगा यहां से निकाली गयी। जा तू राज कर। जूठन खा पुरोहित का।

{ चंद्रा उस पर लाठी से प्रहार करने दौड़ता है। देवल बढ़कर उस प्रहार को अपने ऊपर ले लेता है। लोग देवल और सीता के खिलाफ भड़क उठते हैं। }

गोसांई : निकल जा गांव से।

शंभू : झूठा। प्रपंची। महात्मा बना था जो है सो की।

चंद्रा : इतना बड़ा धोखा, बाप रे बाप !

शंभू : हमारे चढ़ावे वापस करो।

देवल : अंदर जाकर ले लो।

सब : मारो। मारो।

मालिक : खबरदार अगर किसी ने हाथ उठाया।

पुरुष : देवल जिस अंधेरी गुफा से बाहर आया है, यह कैसी यात्रा है। जितनी परतें, पड़ती चली गयीं हैं, उन्हें बेधकर ही बाहर आना हो सकता है।

## दूसरा दृश्य

पुरुष : कंधे पर कुदाल रखे, कृषक प्रसादी गाता हुआ जा रहा है। दौड़ा हुआ कमल आ रहा है। पीछे मनोहर है। दूढ़ लिया कमल ने !

कमल : देवी प्रसादी !

प्रसादी : ओह कमल भइया !

कमल : गंगा और कुसुम कहां हैं ?

प्रसादी : हैं ! हैं ! हैं !

कमल : कुषल से हैं न ?

प्रसादी : वे न कुषल से रहेंगी तो और कौन रहेगा ? जहां जैसे रहती हैं, वहीं जीती हैं।

{ चलते हैं }

प्रसादी : अब मैं देवी प्रसादी नहीं किसान हूं। आश्चर्य है कैसे पहचान लिया मुझे ?

कमल : तुम्हें गाते हुए सुना तो फौरन पहचान गया।

प्रसादी : अब मैं देवी प्रसादी नहीं गाता। बिरहा गा रहा था बिरहा। बिरहा माने विरह का गीत।

कमल : तुम और विरह ?

प्रसादी : अरे कहां से कहां तक बताऊं ? गंगा मां ने पूछा—क्या हो तुम ?.....यही तो पता नहीं। चलो शुरू करो, कहीं देर सवेर नहीं। अपने घर लौटा। घर तो था नहीं। जमीन थी। उसी जमीन पर खड़े हो हम तीनों लोग मजदूरी करते। दिन में मां चक्की पीसती। कुसुम ढेंका चलाती। मैं खेत में हल चलाता। रात—रात में हमने एक घर बनाया। एक दिन मां ने पूछा—उस लड़की को क्यों निहारते हो ? अच्छी लगती है।.....अच्छा। उससे ब्याह करना चाहते हो ? हां मां ! शाबाष, बात करती हूं। सो बात हो गयी। उसी का विरह तो है।

{ हंस पड़ता है। सामने दृष्य में गंगा और कुसुम आमने—सामने बैठी चक्की चलाती हुई गा रही हैं }

छापक पेड़वा छिगुलवा

कि पतवन गहबर रे।

रामा तेहि तर ठाढ़ी है हरीनियां

से हरिना बिसूरैइरै।

चरत चरत हरिना हरिनी से पूछइ रे

की तोर चरहा झुरान की पाती बिनु तरसई रे ?

ना मोर चरहा झुरान न पानी बिनु तरसई रे

रामा कल राजा दषरथ घर छुट्टी तुहहिं मार डरिहैं रे !

गंगा : (अचानक) अरे कमल !

{ कमल दौड़ कर गंगा के पैर पकड़ कर बैठ जाता है। कुसुम बढ़कर मनोहर से बातें करने लगती है। प्रसादी अन्दर जाता है। }

गंगा : तू आ गया ! छी: छी: रो रहा है ? किस पर ? मुझ पर ? अपने आप पर ? सोच रहा है भाभी घर से निकाल दी गयी तो बहुत कष्ट हुआ ? देखा ना, एक घर से निकली, दूसरे घर में आ गयी। यह भुवन नहीं, एक ही भुवन है। किसे कौन बाहर निकाल सकता है ? अरे कुसुम तू खड़ी है ? देख कितना प्यासा है।

{ कुसुम अंदर जाती है। प्रसादी तीन बर्तन में जल लाता है। }

कुसुम : (पात्र में कुछ लिए आती है।) यह गुड़ खाकर पानी पीना। हमने अपने हाथों कोल्हू चलाकर यह गुड़ बनाया है।

गंगा : अरे यहां भी संकोच मनोहर भाई, सब एक ही भवन में रहते हैं तो सब बराबर।

{ दोनों जलपान करते हैं। }

मनोहर : जिस दिन से तुम गंगामाटी गांव में नहीं, उस दिन से जैसे हम फिर अछूत हो गए। सबसे डर लगने लगा।

गंगा : डरपोक ही हो। किसी ने कह दिया अछूत हो, तुम लोगों ने मान लिया। अब सोचते हो, वही लोग आकर कह दें कि तुम लोग अब अछूत नहीं हो। बता कहीं ऐसा होता है ?

कमल : चलो। अब वापस चलो। चलो भाभी। प्रसादी हमें छोड़ने चलोगे न ?

प्रसादी : अरे अब मेरा नाम प्रसादी नहीं, कल्लू है कल्लू ! अरे उसी कल्लू से ही तो भागकर बना था देवी प्रसादी। बड़ी-बड़ी बातें करता था। रटे रटाये गीत गाता था—ताकि कोई मुझे कल्लू न कह दे। अब आ गया समझ में—कल्लू ही कल्लू का साथ देगा बाकी और सब मल्लू।

{ सब हंसते हैं। }

कमल : देवल भइया भी लौटकर देवल हो गये भाभी। उन्हें देखकर समझा जा सकता है, उस दलदल जंगल में कोई कैसे लौटता है।

गंगा : आज कौन सी तिथि है ?

प्रसादी : कृष्ण पक्ष की द्वादसी।

गंगा : शुक्ल पक्ष की छठ को गंगामाटी में एक पूजा हुआ करती थी 'जियाहो' जिया हो.....जिया हो....।

कमल : हो, बचपन में एक बार देखा था। याद है, गांव से लोग गाते बजाते नाचते गंगातट पर गये थे। मेरे बाबा ने मंत्र पढ़ना शुरू किया और उनमें कोई देवी शक्ति आ गयी। गंगा जल में भी वही शक्ति। एक घड़े में वही शक्ति भरकर वह गांव की ओर चले। सारे लोग उनके चारों ओर नाच रहे थे। बाबा भी नाच रहे थे। शक्ति माथे पर उठाये हुए बाबा देवी मंदिर में आये। गांव के लोग मंदिर में घुसने लगे। तभी किसी की आवाज आयी—अछूत मंदिर में नहीं जा सकते।

गंगा : इसी बात पर मेरे बाबा ने विरोध किया। संघर्ष हुआ। मेरे बाबा ने कहा—यह जीवन पूजा है—इसमें कोई छूत अछूत नहीं। वहीं एक जीवन सब में है। यह अधर्मी है—यह कह कर मेरे बाबा को पीटा गया। मालिक जर्मींदार ने बाबा के सारे खेत बेदखल कर दिए।

कमल : छठ का वह जल, देवी को चढ़ा दिया गया।

गंगा : मेरे बाबा मंदिर के बाहर चिल्ला-चिल्ला कर कहते रहे—यह पूजा है। जीवन का स्रोत जीवन है। जीवन जीवन को ही दो। जब मंदिर पूरे जीवन का केन्द्र था, तब वह जल मंदिर में चढ़ता था। अब मंदिर जीवन का केन्द्र नहीं रहा। जहां अब केन्द्र है वहीं अर्ध्य दो इस जीवन जल का ! जो सबसे अधिक गरीब असहाय शोषित है वही है केन्द्र (रुककर) पर बाबा की बात नहीं मानी गयी और बाबा ने जान दे दी.....। तब से जियाहो की पूजा गंगामाटी गांव में नहीं हुई।

कमल : अब होगी। अब होगी 'जियाहो की पूजा।



गंगा : पर याद रखना, पूजा एक भाव है। केवल संकेत है हमारे मानस का। भाव अपूर्ण है यदि वह कर्म नहीं हो सका। यदि हम उसे जी नहीं सके।

पुरुष : मेरे कानों में यह क्या टकरा रहा है ? जो जिया नहीं जा सका उसी खाली स्थान को भरने धर्म आया, पूजा ईश्वर विष्वास.....अंधविष्वास....।

गंगा : जो खाली है, वह पूजा पाठ से नहीं भरा जा सकता। उसे केवल फिर से जीकर ही भरा जा सकता है।

पुरुष : क्या ? यह जीना क्या होता है ? फिर से जीकर जो खाली है वह भरा जा सकता है.....। यह कैसे संभव है फिर से जीना ? समझाओ। बताओ.....जो नहीं है वह कैसे कोई जी सकता है ?

गंगा : समझो यह एक बच्चा है। गंगा है, इसे ठंड लग रही है। यह भूखा है, रो रहा है। गरीब मां ने परेषान होकर अपने रोते हुए बच्चे को झापड़ मारकर चुप करा दिया। यह भूख, यह मार, यह डरी हुई खामोषी—यहीं पेदा हुआ वह खालीपन। क्योंकि जीवन का इतना हिस्सा जिया नहीं गया। इसी का बदला लेगा वह आगे बड़ा बनकर। बच्चों को मारेगा, स्त्री का अपमान करेगा, आत्महिंसा करेगा, मंदिर में माथा टेकेगा, फिर से उसका यह खालीपन, वह रिक्तता नहीं जायेगी क्योंकि यह सब वह जी नहीं रहा है। वह जो कर रहा है उसका कर्ता नहीं है वह। मेरा पति देवल अपने कर्मों का कर्ता नहीं था, वह सब प्रतिक्रिया थी उसी न जिए हुए जीवन की.....उन्हीं अभावों की....।

पुरुष : बाप रे !

{ सन्नाटा }

गंगा : कैसे थे तुम कमल ? क्या कर रहे थे ?

कमल : पढ़ाई में कोई तत्व नहीं मिला। यात्रा करता रहा। घूमता रहा।

गंगा : क्या देखा ?

कमल : यहां हर चीज एक दूसरे से जुड़ी है। भीतर से। बाहर से। कहीं कोई कुछ दूसरे से अलग नहीं।

गंगा : और ?

कमल : सब एक नियम से चल रहा है। चलती हुई बस में अगर चढ़ने की कोषिष की तो मुंह के बल गिरा हूं। क्योंकि बस की चाल और मेरी रफ्तार में संगति नहीं थी। सो यह पाया, जिंदगी केवल जिंदगी है, जैसे यह ठोस पदार्थ केवल यही है जो यह है। इसकी अपनी एक बनावट है। इसके अपने तत्व हैं। इसकी अपनी प्रकृति है, कौषल है, तकनीक है—नियम है। इसे जिसने जितनी भावना से रंगा उतना ही वह गहरी चोट खाकर गिरा। जरा सी गफलत का नतीजा एक दर्दनाक हादसा की शक्त में सामने आ सकता है। कहीं भाग्य और ईश्वर का कोई हाथ नहीं। नियम के भीतर चला तो सुख आनन्द, नियम के विरुद्ध चला तो दुख विपत्ति.....। देखा वह मैं ही हूं जो नियम के भीतर चला, जो नियम के विरुद्ध चला। क्यों चला ? सबके पीछे कारण था। कार्य, कारण...कार्य कारण का एक नियम। एक नियम के पीछे बड़ा नियम, एक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी हुई है—जरा सा अन्तर, विध्न आया नहीं कि मषीन टप्प। फिर इंजीनियर आता है, सुधारने की कोषिष करता है। नहीं चली, तो मषीन बिल्कुल बदल दी जाती है। दूसरी लगाई जाती है....मषीन का कर्म है चलती रहना, उत्पादन करना। देना।

पुरुष : क्या है यह नियम ?

कमल : संपूर्ण रूप से पूरी गति से चलते रहना ।

पुरुष : वह क्या है, जो हर चीज को, ठोस पदार्थ को खामखा भावना से रंग देता है ?

गंगा : जो खाली है, वही कमजोर है और उसकी को भरने आती है भावना । वही रंग चढ़ा देती है हर चीज पर, ताकि हम उसकी सच्चाई न देख सकें ।

पुरुष : अपनी कमजोरी.....निर्बलता छोटापन । देखो, देखो, मेरी यह हथेली.....खुली है....खाली है....कितनी कमजोर है ।.....पर मुट्ठी बांधते ही.....अब देखों.....छुओ.....कितनी मजबूत है ?

{ कमल गंगा की उस मुट्ठी की ताकत देखता है । }

गंगा : इस मुट्ठी में हवा भर रही है । यह खाली नहीं है । और खाली होते ही देखो..... ।

{ हंस पड़ती है । }

गंगा : कुछ नहीं । पर कोई जगह खाली कहां रहने देते हैं । इसमें भावना, भावुकता भरते हैं—ईश्वर, देवी, देवता और क्या है ?

{ पुरुष अपनी मुट्ठी बांधता है, फिर खाली करके देखता है । फिर बांधता है और हंस पड़ता है । }

### तीसरा दृष्य

पुरुष : देखो, गांव में, देवल पेड़ के नीचे कम्बल ओढ़े बैठा है। चुपचाप लोगों को देख रहा है। सीता उसे कुछ खिलाकर पानी दे रही है। लोग अपमान कर रहे हैं। यह हंसी ? किस पर कौन हंस रहा है ? ये गंगामाटी के लोग.....।

गोसांई : छी: छी: छी: ! ब्राह्मण से शूद्र हो गया बेधर्मी।

शंभू : चमाइन के हाथ का खाना—पीना अच्छा लगता है। यही थी इसकी सिद्धि जो है सो की।

चंदरा : एक अन्हरा एक अन्हरी। एक बनरा एक बनरी।

सब : एक छिनरा एक छिनरी।

{ सब की हंसी }

गोसांई : कुछ भी कहो, अब कोई असर नहीं।

चंदरा : जैसे करम वैसे बेसरम !

शंभू : खूब बनी है जोड़ी....

सब : एक अंधा एक कोढ़ी !

{ मनोहर आता है }

मनोहर : देवल भइया ! गंगा दीदी मिल गयी ! गंगा, कुसुम और कमल भइया गंगा तट पर आ गये हैं। जियाओ पूजा होगी।

गोसांई : पुरोहित के अलावा कौन करेगा जिआहो पूजा ?

शंभू : जिआहो मना है इस गांव में जो है सो की।

{ मनोहर चला जाता है। }

तीनों आपस में बातें करने लगते हैं।}

पुरुष : जरा ऊंचा बोला, सुन सकूँ। क्या सोच रहे हो ?

तीनों : तुम से मतलब ?

पुरुष : सबका मतलब एक दूसरे से है। वरना यह गांव न बनता....वे शहर न बसते। देखो देखो.....गंगा तट पर जिआहो प्रारम्भ हो रहा है। उधर कहां भागे जा रहे हो ?

तीनों : देखते नहीं पंचायत होने जा रही है।

{ पंचायत का दृष्य }

शिवानंद : जिआहो पूजा इसीलिए बंद कर दी गयी।

मालिक : तभी तो हमने जीना भी बंद कर दिया। जिआहो का मतलब मुझे गंगा ने समझाया—जियो हो.....जियो...।

गोसांई : आप भी उस सिरफिरी गंगा की बातों में आ जायेंगे ?

मालिक : इस गांव में जो घटनाएं घटी हैं, वे सबूत हैं पुरातन से नवीन जन्म ले चुका है। हमें नये के साथ बदलना होगा नहीं तो हम नष्ट हो जायेंगे।

शिवानंद : जिस तरह से गंगा शूद्रो के साथ जिआहो पूजा करने जा रही है, जानते हैं उसका मतलब क्या होगा ? वह अपने बाबा का हमसे बदला लेना चाहती है। वह लोगों को धर्म के खिलाफ खड़ा कर रही है। जीवन जल, देवी पर न चढ़ाकर न जाने कहां ले जाकर चढ़ायेगी।

गोसांई : कहती है जीवन को जीवन से जोड़ना होगा।

शिवानंद : यह अधर्म है।

मालिक : जीवन का सूत्र जीवन से जुड़े—यह अधर्म है ? यह देवी मंदिर किसने क्यों बनवाया—सब जानते हैं। जिसने देवी प्रतिमा लगवायी, वह कभी खुद आया पूजा करने ?

शिवानंद : मैं हूँ उसकी तरफ से पुजारी पुरोहित।

मालिक : और तुम्हारे ही घर में आग लग गयी, क्यों ? वही आग अब पूरे गांव में फैलेगी। भय के नाते हमारे पुरुखों ने यह देवी मंदिर बनवाया, यह साबित किए रखने के लिए कि वे विजयी हुए। क्योंकि भय था, कोई आकर उन्हें पराजित कर सकता है।

शिवानंद : ऐसी बात आपके मुंह से निकले, सोच नहीं सकता।

{ इस बीच कमल आकर खड़ा था। }

कमल : क्या इतना ही सोच सकते ! जो कुछ तुम करते हो, यहां तक कि जो कुछ तुम सोचते हो, कहते हो, उसका दूसरों पर असर पड़ता है। दूसरों का असर तुम्हारे ऊपर पड़ता है। अदरक, लौंग, हींग डाले बिना यदि उड़द की दाल खाते हैं हम, तो हमारे पेट में वायु बनने लगती है। क्यों ? हर चीज का हम पर और हमसे हर चीज का एक प्रभाव होता है, रिश्ता है।

शिवानंद : बकवास करता है।

गोसांई : यही गया था पढ़ने। हमसे किस्सा बुझाने आया है।

कमल : या तो स्वीकार करो, हम सब एक दूसरे से जुड़े हैं वरना अपने आप को खत्म समझो ? जैसे कोई डाल, पत्ता अपने पेड़ से अलग जिन्दा नहीं रह सकता.....।

शिवानंद : हम जिन्दा नहीं ?

{ सीता के साथ देवल आकर खड़ा हो जाता है। }

कमल : नहीं।

मालिक : मैं भी मानता हूँ जो यहां हुआ वह जिन्दा रहने का लक्षण नहीं। हम जिस व्याधि रोग में फंसे हैं, गंगा ने उसकी ओर इशारा किया है। देख रहा हूँ जो पानी हम पीते हैं, जिस हवा से हम सांस लेते हैं, उसमें कीड़े हैं.....कोई जहर है।

शिवानंद : इस पानी हवा में ईश्वर नहीं ?

देवल : पानी और हवा में ईश्वर को क्यों घोलते हो ? पानी-हवा को पानी हवा ही रहने दो। पानी प्यास बुझाता है, हवा से हम सांस लेते हैं, इतनी सी बात मैं भूल गया था। सुनो, श्मशान में पूजा नहीं अपने आप को मार रहा था। साधुभेष में न जाने किस-किस से बदला ले रहा था। अगर हम सब अपने हाथों से काम करते हुए, एक क्षण बेकार न होते तो वह हमारे जीवन में घुसकर हमें यह नहीं बनाता ! बोलो पिता, तुमने कब मुझे एक मनुष्य माना ? मैंने कब तुम्हें, गंगा को, अपने आप को, जीवित प्राणी माना ? जो है वह नहीं था, जो नहीं है, वही था। किसी भी मंत्र, पूजा-पाठ, ईश्वर से जल की प्यास नहीं बुझती। जो जितना सहज था उसे उतना ही कठिन बना लिया।

{ सीता उसे सम्हालती है। जिआहो का संगीत बजने लगा है। कमल के साथ सब तेजी से जाते हैं 'जिआहो' कहते हुए। केवल दृश्य में शिवानंद एक ओर रह जाते हैं, दूसरी ओर देवल और सीता। सीता कुछ गाने लगी है। }

शिवानंद : यह अधर्म है। ऐसा अपने जीते नहीं होने दूंगा। नहीं होने दूंगा।

{ वही कृपाण लेकर दौड़ता है। पुरुष सामने रास्ता रोक लेता है। }

शिवानंद : हट जा ! कौन है तू ?

पुरुष : तुम्हारा ही एक रूप हूँ। मैं भी भयभीत था तुम्हारी तरह। हर वक्त मैं ही अपना पीछा कर रहा था। मेरा ही संस्कार मेरी बुद्धि का पीछा कर रहा था। मैंने देख लिया और भय-मुक्त हो गया। जिस भूमि पर हम खड़े हैं यही वह केन्द्र जिसे, कितने वर्षों से ढूँढ रहा था। इसी केन्द्र से सब कुछ घूम रहा है। सब कुछ गतिमान है। गति के साथ गतिमान हो, नहीं तो.....नहीं तो....।

शिवानंद : नहीं, केन्द्र धर्म है ! ईश्वर है !

पुरुष : मनुष्य है, मनुष्य.....।

{ संघर्ष कर कृपाण छीन लेता है। शिवानंद भाग जाता है। संगीत के साथ लोग गाते हैं। गंगा के माथे पर मंगल घट है। कुसुम नाच रही है। लोग जिआहो जिआहो कहकर नाच रहे हैं। बाजे बजा रहे हैं। गंगा देवल के हाथ में मंगल घट देती है और स्वयं नाचने लगती है। देवल उसे सीता के हाथ में। सीता चंद्रा के हाथ में, चंद्रा कमल के, कमल मालिक के हाथ में.....इस तरह वह मंगल घट सबके हाथों माथे से लगता हुआ फिर गंगा के हाथ में। पुरुष उनके बीच में जैसे एक हो गया है। }

गंगा : जीवन जल, जहां से निकला है, जहां तक फैलता है चला गया है संगीत की तरह.....इसके बीच में जो कुछ आता है वह इसे बेसुरा करता है.....तोड़ता है रोकता है।

{ फिर वही नृत्य संगीत }

देवल : यही आदि है। यही अंत है। यही केन्द्र है, अक्षर है, यही ध्वनि है। इसके अतिरिक्त जो कुछ कहीं है वह सब इसी की प्रतिध्वनि है।

{ संगीत }

॥ पर्दा ॥

**‘गंगामाटी’ नाटक के**

**अध्यापन से सम्बन्धित सुझाव**

हिन्दी नाटक के आधुनिक विकास क्रम का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी कड़ी के रूप में इसे प्रस्तुत करें।

नाटक का मूल विषय और जीवन दर्शन समझाकर पुस्तक पढ़ाना शुरू करें। यदि रंगमंच और अभिनय की व्यवस्था हो सके तो नाटक का एक प्रदर्शन पहले प्रस्तुत करें।

रंगमंच के अभाव में पात्रों के स्थान पर छात्रों को खड़ा करके विभिन्न संवाद उन्हीं से पढ़वायें।

नाटककार के प्रतीक पुरुष पात्र का अभिनय या संवाद पाठ स्वयं अध्यापक ही करें तो उत्तम होगा।

इसी के दौरान यथा स्थान देश, काल और परिस्थितिगत यथार्थ भी साथ-साथ समझायें।

रंगसज्जा और नाटकीय प्रभाव की समीक्षा भी व्यावहारिक सुविधा के लिये साथ ही करते चलें (यथा प्रत्येक दृश्य की समाप्ति होने पर) नाटक का पाठ समाप्त होने पर ही नाटक की समीक्षा प्रारम्भ करें। समीक्षा के लिये विद्यार्थियों से पीछे दिये हुए प्रश्न करते हुए विचार विनिमय या परिचर्चा करें।

व्यावहारिक समीक्षा के इस रूप में नाटक या कथ्य, षिल्प, प्रतीक और प्रभाव स्पष्ट करते हुए नाटक को साहित्यिक अनुभव जैसा बनायें ताकि इसकी जीवन्तता बनी रहे।

### प्रश्न और अभ्यास

प्रश्न—

विषय—वस्तुगत

1. गंगामाटी का कथ्य क्या है ?
2. गंगामाटी की कहानी लिखो।
3. गंगामाटी की मूल समस्या पर विचार करो।
4. 'जीवन के खालीपन को फिर से ही भरा जा सकता है'—इस आधार पर 'गंगामाटी' का मूल भाव स्पष्ट करो।
5. गंगामाटी नाम की सार्थकता पर विचार करो।

6. गंगामाटी का जीवन दर्शन ओर इसमें नाटककार का दृष्टिकोण समझाओ।

### चरित्रगत

1. गंगा के चरित्र की समस्या और संघर्ष क्या हैं ?
2. तांत्रिकों और देवल की साधना का अन्त क्या होता है ?
3. शिवानन्द का चरित्र और धर्म किस प्रकार का है ?
4. चन्दरा और सीता के चरित्रों का वैषम्य बताइये।
5. कमल, प्रसादी, मनोहर और कुसुम का नाटक में स्थान और महत्व स्पष्ट कीजिए।
6. पुरुष पात्र की नाटक की क्या भूमिका है ?

### षिल्प और कलागत

1. गंगामाटी की भाषा और संवाद शैली पर प्रकाश डालो।
2. इस नाटक के गीतों का भाव और उपयोग बताओ।
3. नाटक की प्रतीकात्मकता पर लेख लिखो।
4. नाटक की वस्तुविन्यास और नाटकीय प्रभाव समझाओ।
5. नाटक के व्यंग्य तत्व का मर्म स्पष्ट कीजिए।

### अभ्यास

1. सभी चरित्रों का घात-प्रतिघात और केन्द्र समझो।
2. नाटक का मंचन और रंगषिल्प समझो और करके देखो।
3. मूकाभिनय और संवाद पाठ अलग-अलग करके दोनों का तालमेल समझो।

### नये और प्रातिभ प्रश्न

1. (क) "बाहर का अन्तर मिटाने से भीतर का अंतर असंख्य गुना बढ़ जाता है"—गंगा के इस कथन का आषय और उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

(ख) "जड़ प्रकृति के नियमों की दीवार बहुत मजबूत और ऊँची होती है"—पुरुष पात्र का यह विप्लेषण किसे लक्ष्य करके हुआ है ? नाटक के मूल से इस कथन का सम्बन्ध भी स्पष्ट कीजिए।

(ग) "मेरा पति एक घायल शिशु है। पिता ने मारा है इसे प्यार देकर। अब यह खुद अपने आप को मार रहा है क्योंकि अपने शत्रु को नहीं मार सकता"—क्या इन पंक्तियों में गंगा ने देवल के चरित्र का पूरा स्वरूप स्पष्ट किया है, विवेचन कीजिए।



(घ) “चारों ओर आग लगी हुई है। सब अपने भीतर जल रहे हैं। हमारी साधना न जाने कब से उलटी दिशा में चल रही है। जो है, उसे स्वीकार करना, नहीं देखना, जो नहीं है उसे अस्वीकार करना, नहीं देखना, जो नहीं है उसे पाने की कोषिष करना।.....जिस दिन से हम उससे अलग हुए, उसी दिन से हमारी साधना शुरू हुई.....साधना उलटी दिशा में मुड़ी....अलगाव का वह महाचक्र चला-जाति, कुल, धर्म, असंख्य भेद। जितने प्रकार के मन, उतने धर्म के प्रकार, उतने दल। हम सब खंड-खंड अपनी भेद की ज्वाला में जल रहे हैं।.....”

गंगा के इस आत्मविश्लेषण से उसके चरित्र और परिस्थितिगत सम्बन्ध एवं तनाव को दिखाइये। क्या इसमें नाटककार का दृष्टिकोण भी है ?

(ड.) “भाभी, तुमने एक बार कहानी कही थी-कमलों का एक वन था। हाँ, कमल वन, जिसमें मदमस्त हाथियों का एक झुंड। कमलों को रौंदते हुए। किसी ने उन हाथियों को नहीं देखा, पर उन रौंदे हुए कमलों पर उनके पैरों के निषान थे।.....मैं अब महसूस करता हूँ, मेरे भीतर है वह कमल वन, एक यहाँ, एक यहाँ, एक यहाँ, एक यहाँ।”

उपर्युक्त संवाद में कमल की मनोदशा के किस रूप का वर्णन हुआ है ? शैली की प्रतीकात्मकता भी स्पष्ट कीजिए।

## (2) क्या ओर कैसे ?

- (क) मेरा अमृत मेरे जीवन में।
- (ख) सबके पीछे कार्य-कारण का सम्बन्ध चल रहा है।
- (ग) चीखने से बड़े नहीं हो जाओगे। रुठता तो बच्चा है।
- (घ) हम सब के भीतर जो बुद्धि है, संकल है, वही है कल्पवृक्ष।
- (ड.) संकल्प स्वर्ग हैं, विकल्प नरक।
- (च) कोई विष्वास जब संगठन का रूप ले लेता है तो वहाँ हिंसा जन्म लेती है।
- (छ) असत्य को अपने असत्य की रक्षा के लिये अब केवल असत्य बनकर रहना होगा।
- (ज) मैं अब महसूस करता हूँ मेरे भीतर है वह कमलवन।
- (झ) शक्ति का मूलाधार कुण्डलिनी है।

## (3) निम्नलिखित गीतों का भाव स्पष्ट कीजिए-

- (क) मन सुगनारे नयन रस पियना....
- (ख) बता दे भाई मेरा घर कहाँ है.....
- (ग) छापक पेड़ छिगुलवा कि पतवन गहबर रे.....
- (घ) चरखा चले सुरति विरहिन का.....

## (4) निम्नलिखित का काव्यतत्व समझाइये-

(क) मेरी स्मृतियाँ मेरे और इस दृष्य के बीच कौंध रही हैं।

(ख) यह कैसा जंगल है जहाँ सारी भूमि दलदल मिट्टी की है। जो सहारा दे रहा है वह उस घने जंगल के बीच ले जा रहा है, जहाँ से फिर कोई वापस नहीं लौटता।

(ग) जिस माटी पर खड़ी हूँ वह दो गली हो चुकी है।

(घ) दीदी जलती हुई आग में खड़ी है। दीदी प्रेम करती है। दीदी प्रेमिका है। प्रेम खंडन नहीं जानता। उसके लिये अवकाश कहां ?

(ङ.) जो जीते हैं उसी के विरोध में खड़े हैं, इससे बड़ा सर्वनाश और क्या हो सकता है ?

(च) यह वह संगीत है जो न जाने किस हिमालय से गिरकर इस गंगामाटी गाँव में आई।

#### (5) निम्नलिखित संवाद का विचार तत्व समझाइये—

“यह साधना नहीं, भगवान है। पर मैं भागकर शहर नहीं गया ? क्या यही गांव मेरा पीछा नहीं कर रहा है ? मेरे होंट अब तक प्यासे क्यों हैं ? माँ का वह दूध पीकर क्या मैं बच्चा ही बना रह गया ? माँ से प्रश्न क्यों नहीं किया ? आज जो देख रहा हूँ क्या वह मैं खुद नहीं ? किस सिद्धि और शक्ति की खोज में गांव से भागकर शहर गया ? वहाँ क्या मिला मुझे ? यही गाँव मेरा पीछा कर रहा ? ओर यह गाँव क्या है ?”

#### (6) निम्नलिखित शब्दों के अर्थ उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए—

चष्मदीद, पंचगव्य, निकृष्ट, छिद्रापथ, त्रिपुर सुन्दरी, प्राणिपात, ऊर्ध्वलोक, उच्चाटन, सिद्धि, आत्मविरोध, श्यामलता, परिक्रमा, विषाक्त, संस्थागत, अनाहद, प्रपंची, प्रतिध्वनि।

#### (7) पहला अंक, दूसरा दृष्य—

(क) इस दृष्य का नाटक में क्या महत्व है ?

(ख) इस दृष्य से गंगा के चरित्र का कौन-सा पक्ष सामने आता है ?

(ग) इसमें आया कथांश और उस पर पुरुष पात्र की क्या प्रतिक्रिया है ?

(घ) इसमें कमल ओर देवल के चरित्रों की तुलना कीजिए।

(ङ.) इस दृष्य का नाटकीय प्रभाव कैसा पड़ता है ?

#### (8) सही उत्तर ढूँढिये—

(क) देवल ने गंगा को क्यों छोड़ दिया ?

उत्तर— 1. गंगा का चरित्र खराब था।

2. देवल दुर्बल था।

3. कुसुम भी गंगा के साथ रहती थी।

(ख) चन्द्रा सीता को पीटता क्यों था ?

उत्तर— 1. अपना ऋण न लौटाने के कारण।

2. षिवानन्द ने अनुमति दे दी थी।

3. वह पागल था।

4. सीता जवान लड़ाती थी।

#### (9) केवल पाँच प्रश्नों के दो तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए—

1. गंगामाटी गांव किसका प्रतीक है ?
2. गंगा से देवल का विवाह क्यों हुआ ?
3. पुरुष पात्र कौन है ?
4. देवल तांत्रिक क्यों बना ?
5. कुसुम गंगा के साथ क्यों रहती थी ?
6. देवी प्रसादी फिर किसान क्यों बना ?
7. कमल शहर क्यों गया ?
8. मनोहर और कमल का क्या सम्बन्ध है ?
9. सीता ने देवल के विरुद्ध जवान क्यों बंद कर ली ?
10. षिवानन्द क्या चाहता था ?
11. नाटक में गीतों का क्या स्थान है ?
12. गीतों की भाषा कौन-सी है ?
13. षिवानन्द के चरित्र में बाप का पक्ष प्रबल है या पुजारी का ?
14. मालिकसिंह षिवानन्द का विरोध क्यों करता है ?
15. देवल को साधू किसने बनाया और क्यों ?
16. गंगा के चरित्र की केन्द्रीय विशेषता क्या है ?
17. कल्लू विहाग क्यों गाने लगा ?
18. 'जिया हो' क्या है ?
19. देवी मन्दिर किसने बनाया था ? क्यों ? कब ?
20. नाटक का उद्देश्य क्या है ?
21. नाटक का प्रारम्भ और अन्त कैसा है ?